अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 24
❑ 1-15 अगस्त, 2013
❑ वर्ष : 36

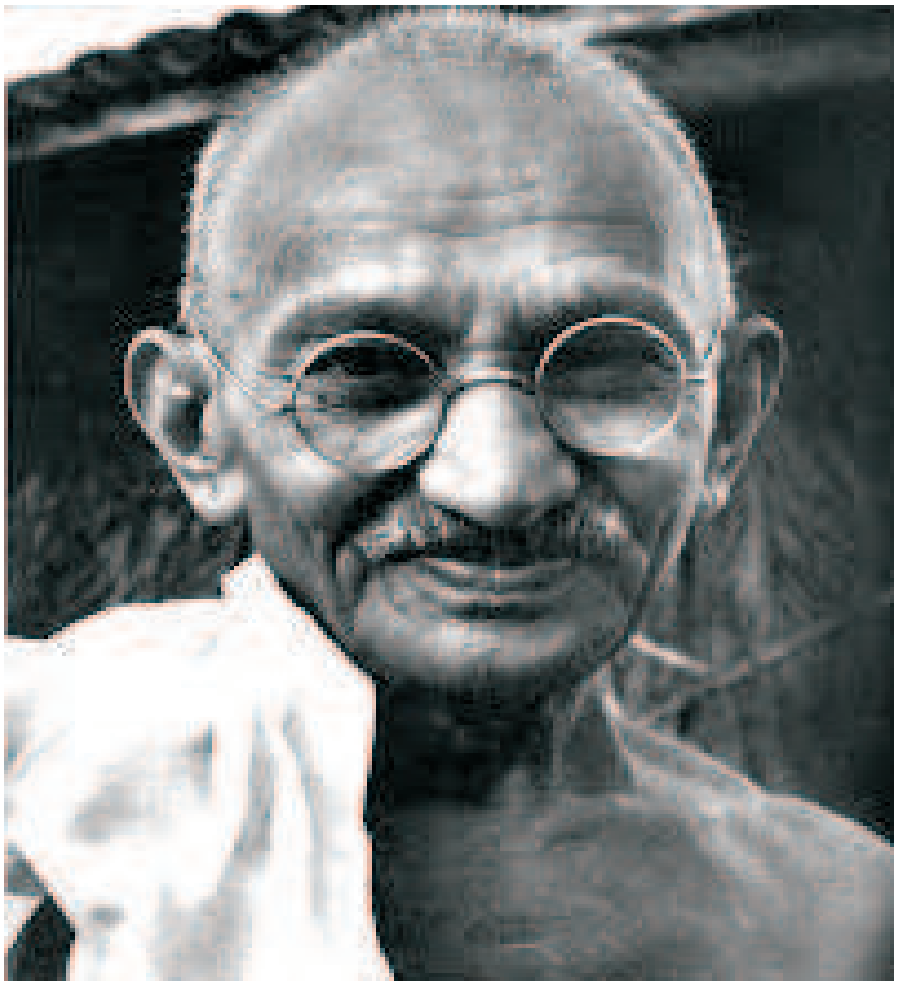

सत्य-अहिंसा की परीक्षा की घड़ी

''आज से आपको कांटों का ताज पहनना होगा। सत्य और अहिंसा की आप सतत साधना कीजिये। नम्र बनिये। सहिष्णु बनिये। ब्रिटिश राज्य ने आपके जीवट को बेशक परख लिया। परन्तु अब आपकी पूरी-पूरी परीक्षा होगी। सत्ता से सावधान रहिये। सत्ता मनुष्य को भ्रष्ट करती है। इसकी तड़क-भड़क और आडंबर में मत फंसिये। याद रखिये कि आप भारत के गांवों में बसे गरीबों की सेवा करने के लिए पदारूढ़ हैं। ईश्वर आपकी सहायता करे।''

महात्मा गांधी : पूर्णाहुति, खंड-3, (16.8.1947)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
वर्ष : 36, अंक : 24
1-15 अगस्त, 2013
सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन व फैक्स : 0542-2440385, 2440223, मो. 9453047097
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	500 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	250 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. पूर्ण स्वतंत्रता के सिवाय... 2
2. स्वतंत्रता का उत्सव... 3
3. क्या यह गांधी का... 4
4. दलों के दल-दल से... 5
5. बोध-गया के बम धमाकों... 8
6. जड़ता से उखड़ती... 11
7. कॉरपोरेटी उपनिवेशवाद... 13
8. रसायनों की जहरीली... 14
9. वैश्वीकरण : गरीब का... 15
10. कृषि की अहमियत... 17
11. गंगा का आर्तनाद... 18
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. हमारा लोकतंत्र लौटा... 20

पूर्ण स्वतंत्रता के सिवाय कुछ नहीं

आप में से हर स्त्री-पुरुष को इस क्षण से अपने को आजाद समझना चाहिए और यूँ आचरण करना चाहिए मानो, आप आजाद हैं और इस साम्राज्यवाद के शिकंजे से छूट गये हैं।

यह बात स्वतंत्रता का सार है। गुलाम की बेडियां उसी क्षण टूट जाती हैं जब वह अपने आप को आजाद समझने लगता है। तब वह अपने मालिक से साफ कहेगा, ''इस क्षण तक तो मैं आपका गुलाम था लेकिन अब मैं गुलाम नहीं रहा। अगर आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं, लेकिन अगर मुझे आप जिन्दा नहीं रहने दें तो मैं आपसे कहना चाहूंगा कि अगर आप अपनी मर्जी से मुझे बंधन मुक्त कर दें तो मैं आपसे कुछ नहीं मांगूंगा। आप मुझे रोटी, कपड़ा देते रहे थे, हालांकि मैं खुद अपनी मेहनत से रोटी-कपड़े का प्रबंध कर सकता था। अब तक तो मैं भोजन-वस्त्र के लिए ईश्वर के भरोसे रहने के बजाय आपके भरोसे रहता था। लेकिन अब भगवान ने मेरे अंदर आजादी की अभिलाषा पैदा कर दी है। आज मैं आजाद आदमी हूं आगे से आपके भरोसे नहीं रहूंगा।''

आप विश्वास रखिए कि मैं मंत्रीपदों आदि के लिए वाइसराय से कोई सौदा करनेवाला नहीं हूं। मैं पूर्ण स्वतंत्रता के सिवाय किसी चीज से संतुष्ट होने वाला भी नहीं। हो सकता है कि वे नमक कर को हटाने, शराब की लत को खतम करने आदि के बारे में सुझाव रखें। लेकिन मैं कहूंगा, ''स्वतंत्रता के सिवाय कुछ भी नहीं।''

***करो या मरो :** यह एक छोटा सा मंत्र मैं आपको देता हूं। आप इसे हृदय पटल पर अंकित कर लीजिए और हर श्वांस के साथ इसका जाप कीजिए। वह मंत्र है, 'करो या मरो' या तो हम भारत को आजाद करेंगे या आजादी की कोशिश में प्राण देंगे। हम अपनी आंखों से अपने देश का सदा गुलाम और परतंत्र बना रहना नहीं देखेंगे। प्रत्येक सच्चा कांग्रेसी चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इस दृढ़ निश्चय से संघर्ष में शामिल होगा कि वह देश को बंधन और दासता में बने रहने को देखने के लिए जिंदा नहीं रहेगा। ऐसी आपकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए।*

अब से हर पुरुष और हर स्त्री को अपने जीवन का हर क्षण यह जानते हुए बिताना है कि वे स्वतंत्रता की खातिर खा रहे हैं और जी रहे हैं और अगर जरूरत हुई तो वे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राण दे देंगे। ईश्वर को और अपने अंतःकरण को साक्षी मानकर यह प्रण कीजिए कि जब तक आजादी नहीं मिलती तब तक हम दम नहीं लेंगे और आजादी लेने के लिए अपनी जान देने को भी तैयार रहेंगे। जो जान देगा उसे जीवन मिलेगा और जो जान बचायेगा वह जीवन से वंचित हो जायेगा। स्वतंत्रता कायर या डारपोक को नहीं मिलती।

(बम्बई, 8-8-1942) **–महात्मा गांधी**

संपादकीय

स्वतंत्रता का उत्सव

देश अपनी स्वतंत्रता के 56 वर्ष पूरे करने जा रहा है। स्वतंत्रता के प्रारम्भिक काल में, राजसत्ता में जो लोग गये थे, उन्होंने यह भूमिका प्रकट की थी कि वे लोकसत्ता का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे राजसत्ता में जाने वाले लोगों एवं लोकसत्ता के लिए काम करने वाले लोगों के बीच दूरी बढ़ती गयी। चूंकि राजसत्ता में जाने वाले लोग, लोक-सत्ता के निर्माण के कार्य से अलग हो गये, इसलिए उनकी राजनीति का स्वरूप बदलने लगा। लोकसत्ता निर्माण के काम से तो दूर हट गये, लेकिन सत्ता में जाने के लिए लोगों के वोट की जरूरत थी। इसलिए एक ओर लोगों को संकीर्ण पहचानों में बांट कर वोट बैंक की राजनीति को बढ़ाया गया तथा दूसरी ओर विकास के पूंजीवादी महत्त्व को बढ़ावा दिया जाता रहा। पूंजीवादी मॉडल को बढ़ाने के कारण एक छोटा वर्ग प्रत्येक संकीर्ण पहचानों में से आगे बढ़ता गया। लेकिन देश का व्यापक जन-समुदाय जो जल-जंगल-जमीन व खनिज से परम्परा रूप से जुड़ा था, शोषण व दोहन का शिकार होता चला गया। जीवन की श्री-वृद्धि करने वाले प्राकृतिक स्रोत भी पूंजीवादी बाजार के अंतर्गत आ गये। इस प्रकार वोट आधारित लोकतंत्र के बावजूद राजसत्ता धीरे-धीरे लोकसत्ता विरोधी होती चली गयी।

लोकसत्ता के निर्माण के काम से जुड़े लोगों के लिए, इन परिस्थितियों के कारण संघर्ष का दायरा बढ़ता ही चला गया। सर्वोदय जमात, जो प्रारम्भ से ही लोकसत्ता के निर्माण के काम से जुड़ी रही, वह भी अपनी वैचारिक भूमिका में निरंतर विस्तार करती चली गयी। ग्राम स्वराज्य, सम्पूर्ण क्रांति, पूंजीवादी बाजार के वैश्विक विस्तार का विरोध तथा अब जल-जंगल-जमीन-खनिज स्वराज्य अभियान, ये सब एक-दूसरे से जुड़ विस्तारित होते चले गये।

स्वतंत्रता एवं स्वराज्य की लड़ाई को आगे बढ़ाने का यह एक पहलू रहा है। लेकिन इस लड़ाई के दौरान, हम अकसर इस लड़ाई के एक दूसरे पहलू पर कम ध्यान दे पाते हैं। स्वतंत्रता के रचनात्मक एवं नव-सृजनात्मक स्वरूप को विकसित करने के काम पीछे छूटते जाते हैं। भूख से, अशिक्षा से, अन्याय व शोषण से, प्रकृति के दोहन से स्वतंत्र होने की मुहिम ही पूरी होने को नहीं आती। जब हम एक कदम बढ़ते हैं, तब तक विपरीत शक्तियां इतनी आगे बढ़ जाती हैं कि हम अपने को लक्ष्य से और दूर खड़ा पाते हैं। ये सारी लड़ाइयां जरूरी हैं, जारी भी रखनी होंगी।

लेकिन स्वतंत्रता का रचनात्मक व सृजनात्मक पक्ष सामने न रहने से भी क्रांति कार्य को समग्रता में आगे बढ़ाने में दिक्कतें आ रही हैं। स्वतंत्र व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कैसे करेगा, यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है।

पूंजीवादी समाजों ने अपने यहां स्वतंत्रता का उपयोग इस रूप में आगे बढ़ाया है जिससे पूंजीवादी बाजार की खपत बढ़े। व्यक्ति की भोगवादी प्रवृत्ति को अधिकाधिक बढ़ाने की स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता का मुख्य प्रेरक आधार बन गया है। इसका नतीजा यह हुआ कि पूंजीवादी समाजों को, अपने उपयोग स्तर को बनाये रखने के लिए, विश्वभर के संसाधनों को अपने नियंत्रण में रखने के षड्यंत्र रचना पड़ा। और जीवन मूल्य के स्तर पर इस बात को स्थापित करना पड़ा कि अपने हितों को (उपभोग को भी) बढ़ाते रहने की प्रवृत्ति ही विवेक-सम्मत (rational) व्यवहार होगा। इस प्रकार लोभ-लाभ एवं बाजार के माध्यम से शोषण-दोहन को औचित्यपूर्ण-विवेकसम्मत व्यवहार के रूप में स्थापित किया गया। इस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण सवाल खड़ा हुआ कि स्वतंत्र व्यक्ति का औचित्यपूर्ण विवेकसम्मत व्यवहार क्या होगा। गांधीजी ने इसके विपरीत पूरी शक्ति से इस बात को समाज के आगे रखा कि स्वतंत्र व्यक्ति के व्यवहार का आधार सत्य, अहिंसा एवं नैतिकता होंगे। यही व्यवहार औचित्यपूर्ण विवेकसम्मत अर्थात् rational होंगे।

दूसरी बात यह कि राजसत्ता की संरचना एवं पूंजीवादी बाजार (अर्थ-व्यवस्था) की संरचना धीरे-धीरे ऐसी बनती गयी कि यह श्रेणीबद्धता आधारित एवं संगठित हिंसा आधारित हो गयी। इसका असर यह हुआ कि मनुष्य यंत्र के पुर्जे के समान कार्य करने लगा। उसके कार्य में उसकी अन्तश्चेतना या अन्तरात्मा की आवाज गुम-सी होने लगी। इस प्रकार स्वतंत्रा का उपयोग इस प्रकार होने लगा, जिसमें अन्तश्चेतना या अन्तरात्मा की भूमिका लगभग खतम-सी हो गयी। स्वतंत्रता का सार्थक एवं सृजनात्मक उपयोग तभी हो सकता है जब वह अन्तरात्मा की आवाज से प्रेरित हो।

अतः आज जब हम स्वतंत्रता एवं स्वराज्य की लड़ाई के दायरे को बढ़ाते जा रहे हैं, तो हमें विवेकसम्मत (rational) स्वतंत्र व्यवहार एवं अन्तरात्मा प्रेरित व्यवहार की कसौटियों को भी नये सिरे से स्थापित करना होगा। इसकी जरूरत इसलिए भी है क्योंकि केवल व्यवस्था बदलने से क्रांति पूरी नहीं होगी। नये मनुष्य के निर्माण के आयामों को भी रेखांकित करना होगा। तथा क्रांतिकारी समूहों को अपने व्यवहार तथा अपने संगठन में इन्हें तत्काल प्रभाव से दाखिल करना होगा। स्वतंत्रता का उत्सव बन्धनों से मुक्ति का भी उत्सव है तथा नव-निर्माण का भी उत्सव है।

बिमल कुमार

क्या यह गांधी का हिन्दुस्तान है?

❑ खान अब्दुल गफ्फारखान

हिन्दुस्तान के लोगों की मुहब्बत ने मुझे यहां पर आने के लिए तैयार किया। यहां की हालत मैं ने देखी। यहां के अनेक नेताओं को भी मैं ने अपने विचार और चिन्ता बतायी। हिन्दुस्तान में आज मर्दों की बुरी हालत है। उन्हें लोभ ने गिरा दिया है, क्या यही गांधी का हिन्दुस्तान है? इतना शौक क्यों है? लोग सिर्फ सत्ता में रहना चाहते हैं, दुनिया क्या कहेगी, इसकी परवाह नहीं।

आज जो लीडर हैं उनके दिमाग में देश या सेवा अथवा देश की गरीबी नहीं है। उनके दिमाग में बस सत्ता और धन है।

आम लोगों ने अहिंसा और प्रेम का जो गांधीजी का रास्ता था उसे छोड़ा है। आपके नेता सत्ता की तरफ दौड़ रहे हैं। ये लोग प्रेम पैदा नहीं कर रहे हैं। आप लोगों को पुनः हिम्मत करनी चाहिए। डर व नफरत छोड़नी होगी। आप अब सरकार को बना सकते हैं, अपनी इच्छा के अनुसार वोट द्वारा बना सकते हैं। लेकिन आज आप में वह मोहब्बत कहां रही?

आपको मालूम है कि गांधीजी ने जब ये काम शुरू किये तब अंग्रेजों की हुकूमत थी, हम गुलाम थे, हमें अधिकार प्राप्त नहीं थे, लेकिन अब वह हालत नहीं है।

मेरे पास गरीब आते हैं। वे अपनी कठिनाई बताते हैं, तो मैं उन्हें कहता हूं कि कसूर किसका है? तुम्हारा ही है। हुकूमत आज वोट की है। वोट में ताकत है कि वह सरकार बदल सकती है। देश में गरीब ज्यादा हैं, उनके वोट हैं, हुकूमत उनकी है। लेकिन ये वोट बेच देते हैं, डर से वोट दे देते हैं। वे ताकत को जानते नहीं हैं। इसलिए मेरी राय है कि आज जो भी रचनात्मक काम हैं, वे सब अच्छी हुकूमत के काम हैं। आपका काम तो जन-जागृति का है।

अतः मैं आपके पास आया हूं कि आप लोग इस मुल्क में फैल जायं। गरीब, किसान, मजदूर को समझायें। यह देश जो है वह सबका है। गरीब मुसीबत को जल्दी समझते हैं।

हुकूमत आपके वोट से बनी है। आपने वोट दे दिया लेकिन जो खिदमत कर सकते थे, उनको वोट नहीं दिया। पैसा कमानेवालों को वोट दिया। इसलिए आज की मुसीबत है। जो गांधीजी का कमसद था कि जब देश आजाद होगा तो यह गरीबी नहीं रहेगी, वह मकसद पूरा नहीं हुआ। गरीब गरीब हो गये और अमीर अमीर हो गये। इसलिए कि हमने वोट का सही इस्तेमाल नहीं किया। डर और पैसे से वोट दिये और यही वहज है कि मैं आपसे कर्ज कर रहा हूं।

हुकूमत ऐसी चीज है कि इनसान को अजीब बना देती है। जिनको गांधीजी ने गद्दी पर बैठाया वे बड़े नेता थे, पर उन्होंने गांधीजी की कुछ नहीं सुनी।

आज की मुसीबत इन नेताओं के कारण है। उन्होंने ही पाप किये हैं।

मुझे याद है कि हम सब अंग्रेजों से डरते थे, हमारे में हिम्मत गांधीजी ने पैदा की। आज के इन नेताओं को किसने बनाया है? गांधीजी ने। यहां बड़ी नाशुक्रगुजारी है। जो तुम्हारा भला चाहता है, जो सेवाभावी है, समाज के लिए सोचने वाला है, उसे आप अपना नुमाइंदा बनायें। अब तो हालत और बुरी है। जिनके दिमाग में पैसा और कुर्सी घुस गयी है, रुतबा बढ़ गया है, अब वे सेवक का काम नहीं कर सकते।

एक बात और, कांग्रेस ने हमें धोखा दिया और पाकिस्तान के हवाले कर दिया। हम भारत में रहना चाहते थे। आपसे मेरा ताल्लुक गांधीजी की वजह से है। हम उनके साथ काम करते थे। आपका और हमारा ताल्लुक नहीं टूटा है। भारत के साथ भले टूटा हो। भारत ने हमें निकाला है। बाबा (विनोबा) ने कहा, कभी-कभी आना और खत लिखना। खत लिख सकता हूं। आने की बात हुकूमत पर निर्भर है।

आखिर में मैं अर्ज करता हूं कि इतिहास को देखें। ईसा को सूली पर चढ़ाया तो इसलिए कि उनकी जो बात थी वह सत्ता, धर्म के खिलाफ थी। लेकिन उनके साथी और उन्होंने नयी बात दुनिया में फैला दी। और यहां गांधीजी के खास लोगों ने यह स्थिति लायी है। उन्होंने गांधीजी की मूल बात छोड़ दी। लोग ध्यान देते नहीं। दुनिया की मुक्ति हिंसा में नहीं है। अहिंसा ही मोहब्बत पैदा कर सकती है। हिम्मत और कुर्बानी माद्दा पैदा कर सकती है। कांग्रेस के जमाने में कितनी कुर्बानी हमने दी। अब कौन है जो कुर्बानी देवे।

अगर लोग अहिंसक न बने तो यह तबाही नहीं रोक सकेंगे। सरकारें एक-दूसरे से नफरत करती हैं। डरती हैं। अतः नफरत में से हिंसा निकलेगी। आज बचे तो कल आग लगेगी। अगर यही रूप दुनिया का रहा तो खतरा है।

अगर इन बातों में आपका, देश का, कौम का फायदा दिखे तो इन पर अमल शुरू कीजिए। **प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय**

(3-4 जुलाई, 1980, सेवाग्राम आश्रम, वर्धा में रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सभा में दिये गये व्याख्यान का सारांश)

दलों के दल-दल से लोकतंत्र को निकालना होगा

❑ अमरनाथ भाई

सच्चे जनतंत्र के लिए देश भर में लोकजागरण यात्रा कर रहे श्री अण्णा हजारे दलीय शासन-प्रणाली पर सवाल उठाते हुए कहते हैं कि 'भारत के संविधान में दलीय-व्यवस्था का कोई प्रावधान नहीं है।' इतने भारी-भरकम संविधान में दल शब्द का तो उल्लेख ही नहीं है। अतः एक असंवैधानिक व्यवस्था 66 वर्षों से इस देश में चल रही है। वस्तुतः हमारे जनतंत्र में दल-तंत्र का ही वर्चस्व है, जन तो कहीं दीखता ही नहीं है। अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्र की परिभाषा— जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा बताया है, लेकिन आज लोकतंत्र दलों के दलदल में फंस कर रह गया है। दलों ने लोकतंत्र को हाई जैक कर लिया है। अतः दलों के नाग-फांस से लोकतंत्र को निकाल कर 'लोक' तक पहुंचाने का भगीरथ प्रयत्न आज की बड़ी चुनौती है।

लोकतंत्र में जनता के कुछ बुनियादी अधिकार निम्न हो सकते हैं :

1. नामांकन का अधिकार, 2. मतदान का अधिकार, 3. उम्मीदवारों में से कोई पसन्द नहीं होने पर नापसन्दगी का अधिकार, 4. उम्मीदवार पर अंकुश रखने का अधिकार, 5. जनता की अपेक्षा पर खरे नहीं उतरने पर वापस बुलाने का अधिकार, 6. जन-अभिक्रम का अधिकार। लेकिन आज तो केवल मतदान के अलावा जनता की कोई भागीदारी इस लोकतंत्र में नहीं रह गई है। मतदान में भी मतदाता का स्वविवेक भी प्रभावित किया जाता है, जात-पात, धर्म, सम्प्रदाय, डंडा-पैसा, लोक-लुभावन घोषणाओं तथा तरह-तरह के वादे-आश्वासनों से। अभी पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फैसले में चुनाव आयोग से कहा है कि यद्यपि पार्टियों के घोषणा पत्र, चुनाव आचार-संहिता लागू होने के पहले ही बनते हैं, लेकिन चुनाव आयोग द्वारा उन्हें नियंत्रित करने के लिए दिशा-निर्देश जारी करना चाहिये। यह फैसला सुनाते समय सुप्रीम कोर्ट की नजर ऐसे वादों पर थी, जिसमें वोटरों को लुभाने के लिए टी. वी, लैपटाप, मिक्सर-ग्राहन्डर आदि देने की बात कही जाती है। इस पर योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोन्टेक अहलुवालिया ने कहा कि आज की सूचना-क्रांति के इलेक्ट्रानिक युग में लैपटाप की बड़ी उपयोगिता है। मोन्टेक साहब से इतना ही निवेदन है कि लैपटाप जरूर दिये जायँ लेकिन आम जनता की दृष्टि से लैपटाप से पहले पानी, बिजली, सड़क, शिक्षा, सुरक्षा आदि अधिक उपयोगी हैं। हमारी योजनाओं, घोषणाओं में प्राथमिकता जैसी कोई चीज होगी कि नहीं? आखिर पैसा तो सरकारी कोष से ही जाता है।

आज जो पार्टियां लोकतांत्रिक व्यवस्था चला रही हैं, उनके अन्दर ही लोकतंत्र नहीं है। ये लोकतंत्र चलायेंगी क्या? सभी पार्टियों में तो सुप्रीमों हैं, हाई कमांड हैं। निर्णय तो अंततः एक के ही हाथ में होता है। दलों में पारदर्शिता व जवाबदेही महत्त्वपूर्ण पहलू है। सूचना आयोग ने राजनैतिक दलों को सूचना के अधिकार के तहत लाने का फैसला किया तो सभी पार्टियां इसके खिलाफ लामबंद हो गयीं। अब अध्यादेश द्वारा उसे निष्प्रभावी बनाने की कोशिश है। पार्टियों को साफ-सुथरी छवि चमकाने का यह फैसला उन्हें रास नहीं आया, शायद जनता से छिपाने के लिए बहुत कुछ है इनके पास। दलों को यह समझना चाहिये कि इस मुद्दे पर यदि जनमत संग्रह देश में कराया जाय तो निन्यानबे फिसदी मत चुनाव आयोग के फैसले के पक्ष में आयेंगे। संसद-विधान सभाओं में हमारे प्रतिनिधियों द्वारा कभी-कभी जिस तरह की अमर्यादित बहसें, उठा-पटक, उधम होते हैं, उसे देखकर शर्म से सिर झुक जाता है। कितने प्रतिनिधि संगीन-अपराधों के दायरे में हैं। सदन में इन माननीयों के आचार-व्यवहार को मर्यादित रखने की दृष्टि से कई समितियां बनाई गयीं, अनेक सुझाव भी आये, किन्तु सभी पानी की लकीर साबित हुए। सभी पार्टियां आपराधिक छवि के व्यक्ति को चुनाव में टिकट नहीं देने की बात पर सहमत दीखती हैं, किन्तु चुनाव मैदान में सभी पार्टियों के दागी उम्मीदवार ताल ठोकते दीखते हैं। अब सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया है कि जो जेल में हैं वे चुनाव में उम्मीदवार नहीं हो सकते हैं, जिन पर अपराध सिद्ध हो जाय, उन्हें सदन की सदस्यता छोड़नी होगी। जो काम संसद को करना चाहिए था उसे न्यायालय को करना पड़ा। राजनीतिक दलों में अच्छे लोग भी हैं, लेकिन सामान्यतया दलों की छवि जनता की नजर में आज अच्छी नहीं रह गई है। यह स्थिति चिन्तनीय है।

दलों के चाल, चरित्र-चेहरे को तो हमने देखा। अब जरा इन दलों की सरकारों द्वारा आजादी के बाद के लम्बे अर्से में किये जाने वाले निर्माण-विकास से देश की दशा और दिशा क्या बनी सरसरी तौर पर इसकी भी समीक्षा कर लेना उपयोगी होगा। इस देश की जनता ने लगभग सभी दलों को कहीं न कहीं राज्यों में सरकार बनाने का अवसर दिया, दो-तीन बार गठबन्धन की सरकारें केन्द्र में भी रहीं, लेकिन कुछ खास फर्क नहीं दिखाई देता, नागनाथ-सांपनाथ सभी बराबर। अब तो सरकारें बदलती हैं। नीतियां नहीं बदलतीं। वही विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय

मुद्राकोष द्वारा नियोजित भूमंडलीकरण मॉडल चलाना है। इसका आकर्षण है या मजबूरी समझ में नहीं आता। आजादी के बाद देश में कुछ अच्छा हुआ ही नहीं, यह कहना सही नहीं होगा। बहुत सारे अच्छे काम हुए हैं, लेकिन कहीं कुछ ऐसा खोट जरूर रह गया कि देश की दशा भी बिगड़ी है और दिशा भी भटकी है। बुनियादी खोट यह है कि शिक्षा, न्याय, शासन का ढांचा, निर्माण-विकास का मॉडल सब आयातित हैं, अपनी संस्कृति, परंपरा, प्राकृतिक संसाधनों आदि केन्द्रित देशज मॉडल को हमने विकास का आधार नहीं बनाया। इसी का परिणाम है कि एक ओर तो देश महाशक्ति बन रहा है, दुनिया के 10 बड़े अमीरों में 4 भारत के हैं, देश के कई उपग्रह आकाश में चक्कर काट रहे हैं, छः-आठ लेन राजपथ बन रहे हैं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के चमचमाते रेलवे स्टेशन, एयरपोर्ट बनाये जा रहे हैं। प्रधानमंत्रीजी बम्बई को संघाई तो पं.बंगाल की वर्तमान मुख्यमंत्रीजी कलकत्ता को लंदन बनाने का वादा करती हैं। दूसरी ओर भारत सरकार द्वारा गठित आयोग के अध्यक्ष स्व.अर्जुन सेनगुप्ता अपनी रिपोर्ट में कहते हैं कि देश की 77 फीसदी आबादी 20/रु.रोज पर गुजर कर रही है। आगे लिखते हैं कि यदि इस वंचित समूह के साथ न्याय नहीं किया गया तो इन्हें माओवादी-नक्सलवादी बनने से कोई ताकत रोक नहीं सकती। भूमंडलीकरण मॉडल अपनाने के बाद से देश में लगभग तीन-लाख किसानों ने आत्म हत्या कर ली। देश में कुपोषण, भूख, गरीबी, बेकारी, विषमता, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, प्रदूषण, अपसंस्कृति, अश्लीलता, नशाखोरी, महिलाओं, कमजोर तबकों पर अत्याचार, खेती-किसानी, कुटीर उद्योगों की उपेक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी, आदि बुनियादी सेवाओं को निजी हाथों में सौपते जाना, नक्सलवाद, माओवाद, आतंकवाद, हिंसा, परिवार का टूटना, समाज का बिखरना तथा बाजार-सरकार का आम आदमी के चौके-चूल्हे तक पहुंचते जाना, दलीय व्यवस्था की असलियत को प्रकट करता है। हद तो तब हो गई, जब पश्चिम बंगाल में किसान-मजदूरों की मसीहा माने जाने वाली चार वामपंथी पार्टियों की सरकार ने टाटा के नैनो कार-कारखाने को जमीन देने के लिए सिंगूर में और विदेशी कम्पनी को जमीन देने के लिए नन्दीग्राम में किसानों की हत्या की।

दलीय लोकतंत्र का चरित्र और उनके द्वारा बनाने गये देश का चेहरा हमने देखा। क्या अब वास्तविक लोकतंत्र-जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा भावी अवधारणा के प्रयत्न और प्रयोग का समय नहीं आया हैं? दुनिया के अनेक राजनीतिक-सामाजिक चिन्तकों ने लोकतंत्र की इसी संकल्पना के अनुरूप राज्य व समाज-व्यवस्था निर्माण करने पर जोर दिया है। कुछ विचारकों के कथन हमारे लिए मार्गदर्शक होंगे, जिन्हें हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

19वीं सदी के इंग्लैंड के प्रसिद्ध विचारक जान स्टुअर्ट मिल का कहना है कि ''कितनी भी ईमानदारी और अच्छे उद्देश्य से आप कार्य करें, आप दूसरों के हितों की रक्षा नहीं कर सकते। लोगों की परिस्थिति में स्थायी सुधार उनके अपने हाथों से ही हो सकता है।'' एक अन्य विचारक सी.ई.एम.जोड़ कहते हैं कि ''राज्य की सत्ता को काटकर उसके कार्य-कलापों को विभिन्न स्तरों पर वितरित किया जाना चाहिये, जिससे कि हर व्यक्ति छोटे-छोटे समूहों का सदस्य बनकर शासन में हिस्सा ले सके। उनकी इच्छा के अनुसार शासन चल रहा है एवं उसमें वह भागीदार है, ऐसा उसे एहसास हो सके। अतः सरकार के भारी-भरकम स्वरूप को घटाना चाहिये और स्थानीय निकायों को सत्ता सौपनी चाहिये, जिसमें कि नीचे के लोग उस सत्ता का उपयोग कर सकें एवं वह उनकी पहुंच के भीतर हो। इससे लोगों को स्वशासन का अनुभव होगा और समाज-निर्माण में उनकी सोच का समावेश होगा।'' जी.डी.एच.कोल ने तो यहां तक कहा है कि ''केन्द्रीकरण और लोकतंत्र परस्पर विरोधी हैं, जिसमें फैसला वहीं के वहीं अपनी भावना प्रकट करने का मौका मिल सके, ऐसी पद्धति लोकतंत्र की आत्मा है।'' अल्डू हक्सले ने कहा है, ''समाज की बेहतरी का राजनीतिक मार्ग विकेन्द्रीकरण का जिम्मेदाराना और स्वयं शासन का है। आखिर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि लोकतंत्र की व्यवस्था आदमी के लिए है, आदमी लोकतंत्र के लिए नहीं है।'' प्रसिद्ध राज्य शास्त्री प्रो. लास्की का कहना है कि ''विकेन्द्रीकरण आवश्यक है क्यों कि अतिकेन्द्रित राज्य में आज्ञापालन करना पड़ता है और इस कारण शायद ही कभी सृजनशीलता जनता में पैदा होगी।'' अरस्तू कहते हैं, ''जहां लोग एक-दूसरे को जानते हैं, वह स्वशासन की पूर्ण और सबसे बढ़िया इकाई होगी। डॉ.बेनी प्रसाद के अनुसार, ''गांव और नगर के स्वशासन द्वारा प्रत्यक्ष लोकतंत्र का लाभ कम लोग हासिल करते हैं, इससे नागरिकता बढ़ती है और लोगों में सहकार भावना का उदय होता है। लोगों को प्रशासन का अनुभव प्राप्त होता है। विकेन्द्रीकरण से केन्द्र का आनवश्यक बोझ कम होता है। केन्द्रित शासन में आम आदमी खो जाता है, वह स्वयं को असहाय महसूस करता है, इसका इलाज स्थानीय स्वशासन ही है।'' महात्मा गांधी ने सर्वोदय समाज, विनोबा ने ग्राम स्वराज्य, नगर स्वराज्य, लोहियाजी ने चौखम्बा राज, जे.पी.ने संपूर्ण

क्रांति की अवधारणा एक नई समाज रचना की दृष्टि से रखी है, जिसमें वर्तमान व्यवस्था के उल्टे पिरामिड को सीधे करने की पद्धति सुझाया है।

जनता-केन्द्रित लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के लिए जनता को ही आगे आना पड़ेगा और अपने मूल अधिकारों के प्रयोग की शुरुआत करनी होगी। आज सरकार बनाने में केवल मतदान के अलावा देश के असली मालिक जनता की कोई भूमिका नहीं रह गयी है। चुनाव के समय जनता से कोई नहीं पूछता कि आपके क्षेत्र से किसे उम्मीदवार बनाया जाय? दलों के सुप्रीमों की सलाहकार समिति द्वारा किसी नागनाथ-सांपनाथ को जनता के सिर पर टपका दिया जाता है या कोई स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में स्वयं खड़ा हो जाता है। उसी में से किसी को वोट देना मतदाता की मजबूरी है। आज वोट जनता का, उम्मीदवार दलों का, अब जनता का वोट तो जनता का उम्मीदवार की घोषणा होनी चाहिए। इसे लोक उम्मीदवार कहा जा सकता है।

जे. पी., विनोबा के मार्गदर्शन में सर्वोदय आंदोलन द्वारा इस अवधारणा पर काफी गहराई से मंथन हुआ है। कुछ आधे-अधूरे प्रयोग भी हुए हैं। संक्षेप में इसका व्यवहारिक स्वरूप निम्न प्रकार होगा :

निर्वाचक मंडल या मतदाता परिषद : यदि एक विधान सभा क्षेत्र में 100 गांव हैं तो इन्हें प्राथमिक इकाई माना जाय। इन प्राथमिक इकाइयों की बैठक में एक या दो प्रतिनिधि क्षेत्र निर्वाचक मंडल के लिए चुने जायेंगे। चुनाव क्षेत्र के सभी गांवों से आये इन प्रतिनिधियों को मिलाकर क्षेत्र निर्वाचक मंडल बन जायेगा, जिसमें दो-ढाई सौ सदस्य होंगे। कार्यकर्ताओं, जागरूक ग्रामवासियों द्वारा लंबे समय तक क्षेत्र के सभी गांवों में लोक उम्मीदवार का विचार, उसकी आवश्यकता-प्रासंगिकता, व्यवस्था परिवर्तन, भावी समाज-रचना का चित्र आदि के संदर्भ में समझदारी बनाने का प्रयास हुआ होगा। काम करते-करते उम्मीदवार योग्य व्यक्ति पर भी नजर होगी। चुनाव की घोषणा होने पर क्षेत्र निर्वाचक मंडल की बैठक होगी, जिसमें उम्मीदवार की योग्यताएं, उसका संकल्प-पत्र तथा उम्मीदवार का चुनाव होगा। इन मुद्दों का विस्तार करके लेख को और लंबा करना उचित नहीं लगता। इतना ही कह सकता हूं कि काफी गहराई से इस संदर्भ में सोचा गया है, चुनाव की एक पद्धति सोची गयी है, जितने नामों का सुझाव सदस्यों द्वारा आये उन्हें एक बोर्ड पर लिख दिया जाय। उनमें से एक-एक करके सभी नाम पर मतदान हो जिसे सबसे कम मत मिले उसका नाम हटाते जायं। अंत में दो-चार नाम रह जाने पर हार-जीत जैसी स्थिति से बचने के लिए इनके नामों की पर्ची डाली जाय, जिसमें से मान्य व्यक्ति एक उठा ले वह उम्मीदवार घोषित किया जाय। प्राथमिक इकाइयों से आये प्रतिनिधि अपने गांवों में वापस जाकर बैठक करके उम्मीदवार की जानकारी देंगे। इस लोक उम्मीदवार को वर्तमान चुनावी हथकंडों को अपनाने की जरूरत नहीं होगी, यह चुनाव उम्मीदवार नहीं, जनता लड़ेगी। इस पद्धति से इन सभी अधिकारों का प्रयोग जनता द्वारा किया जा सकता है। आरंभ में लोक उम्मीदवार के इक्के-दुक्के प्रयोग ही होंगे, धीरे-धीरे विधानसभा के अधिकांश निर्वाचन क्षेत्रों से आरम्भ होकर संसद तक यह प्रक्रिया पहुंचेगी। क्षेत्र निर्वाचक मंडलों के प्रतिनिधियों को लेकर राज्य निर्वाचक मंडल, फिर उसके प्रतिनिधियों को लेकर अखिल भारतीय निर्वाचक मंडल बन सकता है।

चूंकि गांव या नगर के मुहल्लों में एक सन्मुख समाज (फेस टू फेस सोसाइटी) है। वहां की जनता के वोट से राज्य-केन्द्र की सरकारों का गठन होता है, वहां तो ग्रामसभा, मुहल्ला सभा द्वारा ही स्थानीय स्तर पर व्यवस्था चलायी जायेगी, यानी वहां प्रत्यक्ष लोकतंत्र (डायरेक्ट डेमॉक्रेसी) होगी। ऊपरी इकाइयों में लोक नामांकित, लोक चयनित, लोक नियंत्रित प्रतिनिधि सहभागी लोकतंत्र। इस प्रकार 'हमारे गांव-मुहल्ले में हम सरकार, राज्य-केन्द्र में हमारी सरकार की कल्पना तथा दल-मुक्त सरकार व सरकार मुक्त गांव' वाली व्यवस्था बनेगी।

वर्तमान सत्ता, संपत्ति, लूट-खसोट की होड़ में धमा-चौकड़ी वाले चुनावी माहौल में आज ये बातें यूटोपिया लगेंगी, लेकिन जब चुनाव, पद, पैसा, प्रतिष्ठा के लिए नहीं जनता की सेवा के लिए होगा, तब स्पर्द्धा नहीं होगी, परस्पर सहयोग होगा। कोई विधानसभा-संसद में जाकर तो कोई जनता के बीच रहकर सेवा करेगा। व्यवस्था परिवर्तन की दृष्टि से हम चुनाव को देखेंगे तो हमारे आज के मूल्य-मानसिकता में भी तो फर्क आयेगा। विचारों के विकास क्रम में ही डार्विन के 'दूसरों पर जिन्दा रहने' से गांधी के 'दूसरों के लिए' जिन्दा रहने तक के समाज निर्माण की कल्पना की गयी। आखेट-युग और कबिलाई-तंत्र से आज दलीय लोकतंत्र तक पहुंचे हैं तो इससे आगे जाकर लिंकन की परिभाषा को साकार करना असंभव तो नहीं होगा, आवश्यकता उस दिशा में कदम बढ़ाने की है। अतः राजनीतिक दलों के विचारशील नेताओं, देश के विचारकों-चिन्तकों, समाज परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील समूह-संगठनों से निवेदन है कि अब समय आ गया है एक वैकल्पिक समाज रचना की। कृपया देश-दुनिया के चिन्तकों द्वारा सुझाये गये मार्गदर्शक निर्देशों के आलोक में परस्पर विचार-विमर्श करके एक रूपरेखा निश्चित कर जनता को साथ लेकर वर्तमान चौमुखी संकट से देश को मुक्त करने की पहल करें। ❑

बोध-गया के बम धमाकों का अन्वितार्थ

❑ बाबूराव चन्दावार

अशांति फैलाते रहने के लिए इस देश में दुर्घटना का एक सिलसिला बना दिया गया है। इसे उग्रवादी गतिविधियों तथा आतंकवादी गतिविधियों द्वारा उजागर किया जाता है। बोध-गया मंदिर तथा उसके परिसर में 7 जुलाई, 2013 को हुए नौ बम विस्फोट इसी में शुमार लेना चाहिए। राजनीतिज्ञों द्वारा तथा वृत्तवाहिनी पत्र-पत्रिकाएं आदि प्रसार माध्यमों द्वारा उनकी अपनी समझ-सुविधाओं के अनुसार इसका अर्थ लगाया गया है। इसका सिलसिला अभी जारी है। क्योंकि इस तरह की घटनाओं का राजनैतिक दलों द्वारा लाभ उठाने की संकीर्णता इसके पूर्व देखी गयी है, वर्तमान में भी देखा ही जा रहा है।

बोध-गया मंदिर दुनियाभर के बौद्धजनों की आस्था एवं श्रद्धा का पवित्र स्थान है। वह बिहार राज्य में है इसलिए बिहार राज्य की परिस्थिति से वह जुड़ा हुआ भी है। कहा जा रहा है कि इंडियन मुजाहिदिन मुस्लिम संगठन द्वारा बोध-गया मंदिर एवं उसके परिसर में बम विस्फोट किये गये हैं। इसे इस संगठन द्वारा स्वीकार किये जाने के समाचार भी प्रसारित हुए हैं। मॅनमार में मुस्लिमों पर बौद्धों के कथित अत्याचार की प्रतिक्रिया में ही इस मुस्लिम संगठन ने बोध-गया मंदिर में बम विस्फोट कराये हैं। पता नहीं इसमें तथ्य है भी या नहीं। जांच करने पर इसका पता लग सकता है। बिहार में नक्सली-माओवाद का फैलाव हुआ ही है। गया जिला इससे अछूता नहीं है। इस जिले में नक्सली गतिविधियां चलायी जाती हैं। इसे मानते हुए बोध-गया में या आसपास इन गतिविधियों के चलते रहने से बोध-गया मंदिर पर बम विस्फोट किया गया होगा, कहा नहीं जा रहा है। जो आतंकवादी पकड़े गये हैं उनमें एक उग्रपंथी नक्सलवादी भी है। वैसे समूचे बिहार में विभिन्न कारणों से दहशत फैला हुआ है। अर्थात् नक्सली गतिविधियों के चलते भी दहशत फैला हुआ है। इसलिए बिहार जिस तरह बुद्ध, महावीर की भूमि माना जाता है। उसी तरह अब दहशतों में जीने वालों की भूमि भी माना जा सकता है। इसलिए बिहार में उग्रवाद तथा आतंकवाद की एक परंपरा बनी हुई है जिसका आने वाले दिनों में कोई हल निकल आने की संभावना नहीं दीख रही है। बोध-गया के बौद्ध मंदिर पर जो बम विस्फोट किया गया है, मात्र उसे ही केन्द्र मानकर सोचने की आवश्यकता नहीं है। बिहार में जितनी जटिल समस्याएं हैं उन्हें ध्यान में लेकर सोचने की आवश्यकता है।

जिस तरह भारत में राष्ट्रीय राजनीति चलती है ठीक उसी तरह बिहार में भी राजनीति चलती है। राजनीति के चलते राष्ट्रीय स्तर पर जिन समस्याओं का निर्माण हुआ है वे समस्याएँ बिहार में भी हैं। इन समस्याओं ने इधर जो विकृत रूप ले लिया है उसका भी असर होता ही है। बिहार की समस्याएँ विस्फोटक होने के कई कारण हैं। 2014 में भारत में लोकसभा के चुनाव होने जा रहे हैं। बिहार में भी चुनाव होंगे। इसलिए चुनावी राजनीति को लेकर भी बिहार की समस्याएँ जटिल हो रही हैं। इस तरह बिहार की विस्फोटक स्थिति के कई आयाम हैं जिन पर सोच लेने की आवश्यकता है। बिहार की परिस्थिति में एक विस्फोटक राजनैतिक आयाम जुड़ गया है और वह जेपी के नेतृत्व में किए गए आंदोलन के परिणाम स्वरूप जो परिवर्तन हो पाया उससे जुड़ा हुआ है। इसे भुलाकर बिहार की समस्याओं पर सोचना संभव नहीं होगा। जो छात्र नेता जेपी के नेतृत्व में बिहार आंदोलन में शामिल रहे थे वे इस समय बिहार की राजनीति के अगुआ बने हुए हैं। जो प्रमुख राजनैतिक दल इस समय मौजूद हैं उनमें बिहार आंदोलन में जो छात्र नेता थे वे ही बिहार के राजनैतिक दलों का नेतृत्व करते हैं। इन्हीं द्वारा ही बिहार की राजनीति प्रेरित भी है। बिहार के छात्र-आंदोलन से जो प्रतिफलित हुआ है उसपर भी इस समय बिहार की समस्याओं का समाधान करने हेतु सोचा जाना चाहिए। क्योंकि अब स्थिति कुछ उस तरह की बन गई है जिसमें से बिहार के जनजीवन को सम्हलने के लिए आवश्यक दिशा मिलनी ही चाहिए। अन्यथा बिहार का जनजीवन विपरीत दिशा में चले जाने के लिए विवश होगा। राष्ट्रीय स्तर पर जो राजनीति की निर्णायक स्थिति बनेगी उसमें बिहार का भी प्रमुख योगदान होगा। इसके द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक चरित्र बनेगा।

जेपी के नेतृत्व में बिहार तथा देश में 1977 का जो राजनैतिक परिवर्तन हुआ था उससे आशा बनी थी जिसके चलते माना गया था कि देश में बुनियादी परिवर्तन के लिए अवसर बनेंगे। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया क्योंकि 1977 का राजनैतिक परिवर्तन सत्ताकांक्षा की राजनीति में ही सिमटकर रह गया उसे बुनियादी परिवर्तन की दिशा नहीं मिल पायी। 1977 में हुए परिवर्तन से राजनैतिक नेतृत्व करने के लिए नए अवसर अवश्य बने। लेकिन बिहार आंदोलन के कारण

जो छात्र नेता राजनैतिक नेतृत्व करने के लिए पदासीन हुए उन्हें जेपी की विचार धारा का आकर्षण नहीं रहा। मात्र राजनीति में नेतृत्व करने का आकर्षण रहा। इससे उनकी सत्ता पाने की लालसा बनी। वे सत्ता भोगने वालों की श्रेणी में चले गए। परिणामस्वरूप 1977 के उपरांत जो नेतृत्व बिहार में उभरकर सामने आया वह बिहार आंदोलन के उद्देश्य से पूरी तरह से भटक गया। बिहार आंदोलन ने 'संपूर्ण क्रांति' का क्षितिज देखा था। उसे जेपी ने ही दिखाया था। जेपी का नेतृत्व जिन्होंने स्वीकार किया था उन्हें वास्तव में 'संपूर्ण क्रांति' का क्षितिज दीख नहीं पाया। इसलिए बिहार आंदोलन के छात्र नेता 1977 के उपरांत सत्ता पाने की राजनीति में उलझकर रह गए। किसी भी प्रकार से उनकी 'संपूर्ण क्रांति' के प्रति प्रतिबद्धता नहीं बन पायी। इसका जो परिणाम निकला उसी में से बिहार की विपरीत परिस्थिति का निर्माण हुआ है। दिशाहीन स्थिति बनी हुई है। इन्हीं में से बिहार के नए राजनीतिक समीकरण बने हैं जिन्हें सब जानते हैं।

बिहार का छात्र आंदोलन निर्दलीय था। दलगत राजनीति से ऊपर उठकर परिवर्तन की दिशा में बढ़ने का उसका संकल्प बने इसकी अपेक्षा की गई थी। इसकी कोई कार्यपद्धति तथा रणनीति नहीं बन पायी क्योंकि इसकी आकांक्षा जग नहीं पायी। जिनके द्वारा इसकी आकांक्षा जगने की उम्मीद की गई थी उनका छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी का संगठन बनाने की कोशिश अवश्य की गई थी। छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी में 'संपूर्ण क्रांति' के लिए जो चरित्र निर्माण की कल्पना की गई थी तथा 'संपूर्ण क्रांति' की आकांक्षा को दर्शाने वाली वह रहे, वह सध नहीं पाया। इसके कारणों को जानकर उस पर अब तक विचार नहीं किया गया है। इससे जो जड़ता दिखाई दी है उसे कतई सराहनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि सोच रुक जाना ही जड़ता का मुख्य लक्षण माना जा सकता है।

1977 के बाद जो बिहार की स्थिति बनी है उसमें राजनैतिक दलों का चरित्र उभरा है, वह इस समय बहुत ही संदिग्ध अवस्था में है। इसमें अवसरवादिता के लिए ही प्रमुखता से स्थान बना हुआ है। इसे बिहार तक सीमित कर लेना उचित नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर भी अवसरवादिता का एक घिनौना स्वरूप उभरा हुआ है, उसे किसी भी दृष्टिकोण से स्वस्थकारी नहीं माना जा सकता है। परिवर्तन के लिए बिहार अगुआ बना था, बुनियादी परिवर्तन के लिए वह आगे बढ़ पाएगा इसकी कल्पना और अपेक्षा की गई थी। बिहार से ही राजनैतिक परिवर्तन का दौर शुरू हुआ था जो राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन के लिए प्रेरित करने वाला होगा, माना भी गया था। बिहार को बुनियाद में रखकर अगली दिशा को समझा जा सकता है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर जिस दिशा की कल्पना की जा सकती है उसकी धारा बिहार से ही निकलने की संभावना है। बिहरी की स्थिति में परिवर्तन की धारा अभी सूखी नहीं है। इसमें 1977 के बाद जो स्थिति बनी है वह वैचारिक प्रतिबद्धता के अभाव में बिखरी हुई दिखाई पड़ती है। बुनियादी परिवर्तन के लिए जेपी ने जिस 'संपूर्ण क्रांति' की कल्पना की थी उसे लाभ मिलेगा या नहीं इस पर सोच लेना अपेक्षित है। क्योंकि 'संपूर्ण क्रांति' के लिए यदि अवसर नहीं बन पायेंगे तो क्या होगा इसका एक निर्णायक स्वरूप इसी में से उभरकर सामने आ सकता है जिसके चलते 'संपूर्ण क्रांति' का महत्त्व एवं उसकी प्रासंगिकता अवश्य ही समझ में आएगी।

राष्ट्रीय स्तर पर 1971 की पूर्व स्थिति में जो ठहराव आ गया था उसी में बिहार का परिवर्तनकारी आंदोलन हो पाया था। जनजीवन जिस तरह का बना हुआ है उसमें सामंती संस्कार तथा सामंतवाद का ही प्रमुखता से प्रभाव रहा है। परिवर्तनकारी आंदोलन के माध्यम से उसे परास्त करना सध पाए यह अपेक्षित है। जिस क्रांतिकारी परिवर्तन की कल्पना की गई है उसमें सामंती संस्कारों तथा सामंतवाद को मिटाना अपेक्षित है। इसके अभाव में परिवर्तन की संभावना बनेगी नहीं। दुनिया में जितनी भी परिवर्तनकारी क्रांतियां हुई हैं उनका उद्देश्य सामंतवाद को मिटाना ही रहा है। इस देश में सामंतवाद प्रभावी रहा है, वह पनपा भी है और परिवर्तनकारी आंदोलनों का चरित्र सामंतवादी संस्कारों को मिटाने का ही बने अपेक्षित भी है। बिहार के जनजीवन में सामंतवाद की जड़ें इतनी गहरी हुई हैं कि उनको उखाड़ फेंकना साधारण आंदोलनों द्वारा संभव हो नहीं सकता। क्रांति को लक्ष्य करके ही परिवर्तन का आंदोलन किया जाना अनिवार्य है। बिहार में परिवर्तन का जन-आंदोलन अवश्य हुआ है। लेकिन उसके द्वारा सामंतवाद पर चोट करना संभव नहीं हुआ है। बिहार आंदोलन भी सामंतवाद के कुचक्र में फंस कर रह गया। जिसे बाहर निकाल पाना संभव नहीं हो रहा है। इसलिए 'संपूर्ण क्रांति' की शांतिमय प्रक्रिया प्रतिबद्धता के साथ नहीं चल पाने से बिहार के राजनैतिक दायरे में परिवर्तन की आकांक्षा कुंद होकर रह गयी है। परिणाम स्वरूप खूनी क्रांति में माननेवाली गतिविधियों के लिए अवसर बन गए हैं। नक्सली-माओवाद का बिहार तथा पड़ोसी राज्यों में फैलाव हुआ है, वह इसी का अनिवार्य परिणाम माना जा सकता है।

परिस्थिति रुक नहीं पाती है वह गतिशील होती ही है। बिहार में 'संपूर्ण क्रांति' के लिए प्रतिबद्धता का अभाव हो जाने से संकीर्ण परिवर्तन के लिए अवसर बने हैं जिसके चलते वामपंथ की उग्रता के लिए तथा दक्षिणपंथ के परिवर्तन की विरोधी गतिविधियों को चला पाने के लिए अवसर तथा अनुकूल स्थिति बनते जाना ही स्वाभाविक हो गया है। 1977 के उपरांत जो स्थिति बिहार की बनी हुई है वह नक्सली-माओवाद की उग्रता तथा दक्षिणपंथी फासीवादी (फॅसिस्ट) आतंकी गतिविधियों के लिए अवसर बना है जिसका मुकाबला करने के लिए साहस नहीं जुटाया जा रहा है। मुकाबला तब किया जा सकता है जब 'संपूर्ण क्रांति' के लक्ष्य को पाने के लिए प्रतिबद्धता के साथ धैर्यपूर्वक दृढ़ता का प्रदर्शन करना संभव हो।

नक्सली-माओवाद बिहार तक सीमित होकर नहीं रह गया है। पूर्व भारत तथा दक्षिण भारत के हिस्सों के कई राज्यों में वह फैला हुआ है। क्रांति के लिए विस्फोट करते रहने से ही परिवर्तन की धारा तेजी से बहाई जा सकती है। नक्सली-माओवाद के रणनीतिकार ऐसा मानते हैं।

बोध-गया मंदिर पर जो बम धमाके किये गये हैं उनका चारित्रिक स्वरूप अब तक उतना स्पष्ट नहीं हो पाया है जितना कि स्पष्ट होना चाहिए। बिहार की राजनीति में सत्तासुख पाने वाले भाजपा तथा जदयू दोनों दल अब संयुक्त नहीं हैं। एक-दूसरे से अलग होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखे हुए हैं। संयुक्त होकर अस्तित्व बनाये रखना तथा विभक्त होकर अस्तित्व बनाये रखना दोनों में अंतर है। इनकी राजनैतिक सत्ता पाने की प्रतियोगिता उस हद तक चली गयी है जिसमें इसका संघर्ष लोकतांत्रिक सीमा पार करके हिंसा की परिधि में चला जा सकता है। इसलिए 'संपूर्ण क्रांति' का शांतिमय आंदोलन चलते रहना ही इसका उपाय हो सकता है और वह बिहार के लिए प्रासंगिक भी है। लेकिन 'संपूर्ण क्रांति' का शांतिमय आंदोलन चला पाना यदि सम्भव नहीं हुआ तो नक्सली दहशत तथा फासीवादी अशांति दोनों के दुष्प्रभाव में बिहार के जनजीवन को संकटमय स्थिति में ही जीने के लिए विवश होना पड़ सकता है। शासन-प्रशासन द्वारा बिहार के सामंतवाद को सुरक्षा मिलती रही है।

भारत में लोकतंत्र के नाम से जो शासन चलाया जाता है उसमें प्रशासनिक अधिकारी तथा कर्मचारी सामंतशाही के लिए पोषक संरक्षक बने हुए हैं। बिहार का जनजीवन हमेशा ही सामंतवादी शोषण का शिकार होता आया है। इसलिए बिहार में संसदीय लोकतांत्रिक तरीके से जो भी शासन अस्तित्व में आता है वह प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सामंतवाद समर्थित नीतियों द्वारा ही लोकप्रतिनिधि तथा मंत्री सक्रिय हो पाते हैं। उनकी अपनी स्वतंत्र सोच इस काम में आती नहीं है। बिहार में कोई भी कानून वह जितना भी प्रगतिशील तथा लोकोपयोगी हो लोगों के हित में, अमल में लाने की स्थिति कभी बनती ही नहीं है। प्रशासनिक अधिकारी तथा कर्मचारियों की मर्जी पर ही कोई भी कानून अमल में लाया जा सकता है। इसमें सामंतवाद का पोषण होता है। इस कारण से भी नक्सली-माओवाद की उग्रता से होने वाली हिंसा की घटनाएं होती रहती हैं। लोकतंत्र में मानने वाले राजनैतिक दल गंभीरतापूर्वक सोच नहीं पाते हैं। क्योंकि सत्तासुख पाने की स्पर्द्धा, प्रतियोगिता में वे इतने डूबे हुए हैं कि जनहित में कुछ करने की क्षमता उनमें रह नहीं गयी है। यह स्थिति राष्ट्रव्यापी है। बिहार में सर्वाधिक मात्रा में इसका अनुभव किया जाता है।

दक्षिण पंथी दल प्रशासनिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों पर अपना प्रभाव जमाकर रखते हैं और शासन-प्रशासन की गतिविधियों पर इसका असर दिखायी भी देता है। क्योंकि दक्षिणपंथ की फॉसीवादी तत्त्वों ने शासन-प्रशासन में अधिकारी तथा कर्मचारियों को अपने पक्ष में रखने की युक्तिसंगत रणनीति बना ली है। इस कारण लोगों के हित में शासन-प्रशासन कार्यरत नहीं हो पाता है। सामंतवादियों के हित में ही वह कार्यरत होता है। इसे नक्सली-माओवादियों ने जान और समझ भी लिया है। बिहार में इसका अनुभव हमेशा ही आता रहता है जिसपर संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा नियंत्रण कर पाना सम्भव नहीं हो रहा है। 2014 में होने जा रहे लोकसभा चुनाव के संदर्भ में जो राष्ट्रव्यापी राजनैतिक वातावरण बनेगा और उससे जनजीवन जिस अनुपात में प्रभावित होगा वह भविष्य ही बतायेगा। सत्ता पाने की स्पर्द्धा तथा प्रतियोगिता राजनैतिक दलों में जिस प्रकार की होगी उसके द्वारा पहले से भी अधिक मात्रा में हिंसा का राष्ट्रव्यापी वातावरण बन सकता है। बिहार का जनजीवन अवश्य प्रभावित होगा।

जेपी द्वारा बिहार में जो परिवर्तन की धारा बनायी गयी है उसमें मानने वालों के लिए इस समय बिहार की परिस्थिति चुनौती भरी होगी जिसे स्वीकार करके जेपी द्वारा बनायी गयी धारा में जो विश्वास करते हैं उन्हें समय रहते सजग हो जाना चाहिए और जनहित में निष्पक्ष होकर अपनी गतिविधियां तेज कर देनी होंगी! ❑

❑ *सईनगर-2, डी-1, फ्लैट नं. 13, सिंहगढ़ रोड, पुणे-411030 (महाराष्ट्र), फोन : 020-24250693*

जड़ता से उखड़ती जड़ें

❑ अनुपम मिश्र

कुछ शब्द ऐसे होते हैं कि वे हमारा पीछा ही नहीं छोड़ते। क्या-क्या नहीं किया हमने उन शब्दों से पीछा छुड़ाने के लिए! तब तो हम गुलाम थे। फिर भी हमने गुलामी की जंजीर को तोड़ने की कोशिश के साथ ही अपने को दुनिया की चालू परिभाषा के हिसाब से आधुनिक बनाने का रास्ता पकड़ने के लिए परिश्रम शुरू कर दिया था। आजाद होने के बाद तो इस कोशिश में हमने पंख ही लगा दिए थे। हमने पंख खोले पर शायद आंखें मूंद लीं। हम उड़ चले तेजी से पर हमने दिशा नहीं देखी। अब एक लंबी उड़ान शायद पूरी हो चली है और हमें वे सब शब्द याद आने लगे हैं, जिनसे हम पीछा छुड़ाकर उड़ चले थे। अभी हम जमीन पर उतरे भी नहीं हैं। लेकिन हम तड़पने लगे हैं, अपनी जड़ों को तलाशने।

यों जड़ें तलाशना, जड़ों की याद अनायास आना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन इस प्रयास और याद से पहले हमें इससे मिलते-जुलते एक शब्द की तरफ भी कुछ ध्यान देना होगा। यह शब्द है—जड़ता। जड़ों की तरफ मुड़ने से पहले हमें अपनी जड़ता की तरफ भी देखना होगा, झांकना होगा। यह जड़ता आधुनिक है। इसकी झांकी इतनी मोहक है कि इसका वजन ढोना भी हमें सरल लगने लगता है। बजाय इसे उतार फेकने के, हम इसे और ज्यादा लाद लेते हैं अपने ऊपर। जड़ता हटे थोड़ी भी तो पता चले कि बात सिर्फ जड़ों की नहीं है। शायद तने की है, डगालों, शाखाओं, पत्तियों तक की है। हमारा कुल जीवन, समाज यदि एक विशाल वृक्ष होता, उसका एक भाग होता, तो जड़ों से कटने का सवाल भी कहां उठता। अपनी जड़ों से कटे तने, शाखाएं, पत्तियां दो-चार दिनों में मुरझाने लगती हैं। पर हमारा आधुनिक विकसित होता जा रहा समाज तो अपनी जड़ों से कटकर एक दौर में पहले से भी ज्यादा हरा हो चला है—कम से कम उसे तो ऐसा लगता है। और फिर वह अपने इस नए हरेपन पर इतना ज्यादा इतराता है कि अपने आज के अलावा अपने कल को, सभी चीजों को उसने एकदम पिछड़ा, दकियानूस मान लिया है। कल की यह सूची बहुत लंबी है। इसमें भाषा है, विचार है, परंपराएं हैं, पोशाक है, धर्म है, कर्म भी है।

सबसे पहले भाषा ही देखें। भाषा में अगर हम किसी तरह की असावधानी दिखाते हैं तो हम व्यवहार में भी असावधान होने लगते हैं। भाषा की यह चर्चा हिंदी विलाप-मिलाप की नहीं है। उदाहरण देखें : हिंदी में उदार शब्द बड़े ही उदात्त अर्थ लिये हैं। शुभ शब्द है, लेकिन इस नई व्यवस्था ने इस इतने बड़े शब्द को एक बेहद घटिया काम में झोंक दिया है। इसे आर्थिक व्यवस्था से जोड़कर अंग्रेजी के अनुवाद से एक नया शब्द बनाया गया है—उदारीकरण। जब मन उदार बन रहा है, सरकार उदार बन रही है, अर्थव्यवस्था उदार हो चली है तब काहे का डर भाई! मन में कैसा संशय? उदार का विपरीत है, कंजूस, कृपण, झंझटी, संकीर्ण। तो क्या इस उदारीकरण से पहले की व्यवस्था कंजूसी की थी? वह तो सबसे अच्छे माने गए नेतृत्व का दौर था—नेहरूजी, सरदार पटेल जैसे लोगों का था। जड़ों की तलाश को निजी स्तर पर लेने से कोई व्यावहारिक हल हाथ लगेगा नहीं। समाज के, देश के, काल के स्तर पर जब सोचेंगे तो जड़ों की चिंता हमें उदारीकरण जैसी प्रवृत्तियों की तरफ ले जाएगी। हम उनके बारे में ठीक से सोचने लगेंगे और तब हम सचमुच सच के सामने खड़े हो पाएंगे। यदि हम ऐसा नहीं कर पाते तो पाएंगे कि जड़ों की तलाश भी जारी रहेगी और हम अपनी जड़ें खुद काटते भी रहेंगे। 'अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना' कहावत में यह भी जोड़ा जा सकता है कि हम खुद अपनी कुल्हाड़ी की धार चमका कर उसे और ज्यादा धारदार बनाकर गा-बजाकर अपने पैरों पर मारते रहेंगे।

आधुनिक दौर में, अपनी जड़ों से कटकर हमने जो विकास किया, उसके बुरे नतीजे तो चारों तरफ बिखरे पड़े हैं। स्थूल अर्थों में भी और सूक्ष्म अर्थों में भी। ढँका हुआ भूजल, खुली बहती नदियों, तालाबों का पानी और समुद्र तक बुरी तरह से गंदा हो चुका है। विशाल समुद्रों में हमारी नई सभ्यता ने इतना कचरा फेंका है कि अब अंतरिक्ष से टोह लेने वाले कैमरों ने अमेरिका के नक्शे बराबर प्लास्टिक के कचरे के एक बड़े ढेर के चित्र लिये हैं। लेकिन अभी इस स्थूल और सूक्ष्म संकेतों को यहीं छोड़ वापस उदारीकरण की तरफ लौटें। हमारे बीच जो भी नई व्यवस्था या विचार आते हैं, वे हर पंद्रह बीस सालों में अपना मुंह किसी और दिशा में मोड़ लेते हैं। अभी कुछ ही बरस पहले तो दुनिया के किसी एक पक्ष ने हमें यह पाठ पढ़ाया कि राष्ट्रीयकरण बहुत ऊंची चीज है। हमने वह पाठ तोते की तरह पढ़ा फिर रट लिया उसे। आगे पीछे नहीं सोचा और देश में सब चीजों

का राष्ट्रीयकरण कर दिया। हमने अपने खुद के तोतों से भी नहीं पूछा कि तुम भी कोई पाठ जानते हो क्या? अपनी डाल के ऊपर बैठे तोतों की तरफ देखा तक नहीं। राष्ट्रीयकरण में ऐसा कुछ नहीं था कि उसके नीचे जो कुछ भी डाला जाएगा, वह सब ठीक हो जाएगा। खूब प्रशंसा हुई, तालियां बजीं। कुछ नेता एकाध चुनाव भी जीत गए होंगे। फिर इससे काम चला नहीं। समस्याएं तो हल हुईं नहीं तो फिर एक नई दिशा पकड़ ली। सरकार की सब चीजें निजी हाथों में सौंप देने का, दौर आ गया। पर इसे बाजारीकरण नहीं कहा गया। नाम रखा उदारीकरण। किसी ने भी यह नहीं कहा कि यह तो उदार में मिल गया हल है। इसका यदि कोई नाम नहीं रखना हो तो इसे उधारीकरण कहो न।

अपनी जड़ों से कटे इस नए विकास ने बहुत से चमत्कार कर दिखाए हैं। निस्संदेह आज कुछ करोड़ हाथों में मोबाइल फोन है। लाखों कम्प्यूटर हैं, लोगों की टेबिलों पर और गोद में भी। अब तो हाथ में भी टेबलेट है। इन माध्यमों से पूरी दुनिया में तो बातें हो सकती हैं पर बगल में बैठे व्यक्ति से संवाद टूट गया है। सामाजिक कहे जाने वाले कम्प्यूटर नेटवर्क चाहे जब कुछ लाख लोगों को कुछ ही घंटों में बैंगलोर, चेन्नई, हैदराबाद से खदेड़कर उत्तर-पूर्व के प्रदेशों में जाने को मजबूर कर देता है। इस विकास ने महाराष्ट्र में आधुनिक सिंचाई की योजनाओं पर सबसे ज्यादा राशि खर्च की है। आज उसी महाराष्ट्र में सबसे बुरा अकाल पड़ रहा है। इस विकास ने बहुत से लोगों को अपने ही आंगन में पराया बनाया है। यह सूची भी बहुत बड़ी और यह संख्या भी। अपने ही आंगन में पराए बनते जा रहे लोगों की संख्या उस बहुप्रचारित मोबाइल क्रांति से कम नहीं है। अपनी जड़ों से जुड़े अनगिनत लोग विकास के नाम पर काट कर फेंक दिए गए हैं। बलि-प्रथा, नर-बलि-प्रथा कभी रही होगी। आज तो विकास की बलि-प्रथा है। कुछ लोगों को ज्यादा लोगों के कल्याण, विकास के लिए अपनी जान देनी पड़ रही है और जिनके लिए यह सब होता है, उनमें से न जाने कितने लोगों को आज यह नया जीवन अपनी जड़ों से इतना ज्यादा काट देता है कि उन्हें जीवन जीने की कला सीखने अपनी महंगी नौकरियां छोड़ संतों के शिविरों में जाना पड़ता है। एक हिस्सा गरीबी में अपनी जड़ों से कटकर विस्थापित होता है तो दूसरा भाग अपनी अमीरी का बोझा ढोते हुए लड़खड़ाता दिखता है। ऐसी विचित्र भगदड़ में फंसा समाज अपनी जड़ों को खोज पाएगा, उनसे जुड़ पाएगा—ऐसी उम्मीद रखना बड़ा कठिन काम है। लेकिन ये शब्द हमारा पीछा आसानी से नहीं छोड़ने वाले। जड़ें शायद छूटेंगी नहीं। दबी रहेंगी मिट्टी के भीतर। ठीक हवा पानी मिलने पर वे फिर से हरी हो सकेंगी और उनमें नए पीकें भी फूट सकेंगे। हमें अपने को उस क्षण के लिए बचाकर रखना होगा। ❑

कविता

विश्व वंद्य बापू

–मूलचन्द्र अग्निहोत्री

सम्पूर्ण विश्व यह मान गया, गांधी थे नवयुग निर्माता ।
इस भारत भूमि के राष्ट्रपिता, व दलितों के आश्रयदाता ॥
शुचि हृदयस्तल में बापू के, करुणा के सागर बहते थे ।
दीनोद्धार निज कर्म समझ, पर हित अति पीड़ा सहते थे ॥
उनका था बस उपदेश यही, सच बोलो उत्तम कृत्य करो ।
यदि मान बढ़ाना है अपना, तो फिर पशुवत मत कर्म करो ॥
गांधी अर्द्धनग्न रहकर, लगते थे जैसे वैरागी ।
पर पाकर उनका शौर्य-शील, इस भारत की जनता जागी ॥
परतंत्र देश था पर उसमें, गांधी निर्मित आँधी आयी ।
जागे स्वतंत्रता के सपूत, तब ब्रिटिश भूमि अति थर्राई ॥
उतना विशाल अंगरेज राज, बापू से हार मान गया ।
भारत में भी सच्चे सपूत, साम्राज्य ब्रिटिश यह जान गया ॥
भयभीत हो गये गांधी से, भारत की सत्ता छोड़ दिया ।
अंगरेजी उपनिवेशवादी शासन ने, भारत से प्रस्थान किया ॥
गांधी सत्य-अहिंसा का, प्रज्वलित दीप दिखलाते थे ।
बापू इस तरह सदा सबको, शुचि सदाचार सिखलाते थे ॥
इस सत्य-अहिंसा के बल से, मिटा भारत का अंधकार ।
परतंत्र राष्ट्र निज कर स्वतंत्र, कहलाये अति मानव उदार ॥
इतने उत्तम जो करे कृत्य, वह नर ईश्वर है मनुज नहीं ।
स्वीकार करो वंदन मेरा, प्रस्तुत मेरी लघु भेंट यही ॥

❑ *87, नरोत्तम नगर दक्षिणी, सिधौली, जनपद-सीतापुर-261303 (उत्तर प्रदेश), मो. 9452270510*

कॉरपोरेटी उपनिवेशवाद का पोषक कानून

❑ डॉ. कृष्णस्वरूप आनन्दी

भारत सरकार ने भूमि अधिग्रहण कानून, 1894 के स्थान पर नये कानून का मसविदा तैयार कर लिया है और कई चरणों से गुजरते हुए उस पर प्रायः सभी राजनीतिक दलों के बीच कमोबेश आम राय-सी बन चुकी है। यह कहा जा रहा है कि भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन बिल, 2011 यदि कानून की शक्ल अख्तियार करेगा, तो वह आर्थिक उदारीकरण/सुधारीकरण की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभावी कदम होगा।

सच कहा जाय, तो प्रस्तावित कानून जमीन के कॉरपोरेटीकरण के विस्तार एवं घनत्व को और तेज, मजबूत या पक्का करेगा। निर्माणाधीन कानून का सबसे खतरनाक पक्ष यह है कि वह यह मानकर चलता है कि औद्योगीकरण, शहरीकरण और इंफ्रास्ट्रक्चर निर्माण/विकास के लिए जमीन हर हालत में ली जायेगी, इसे कतई रोका नहीं जा सकता, दरअसल यह एक अपलटनीय या अवश्यम्भावी कदम है, भूमि अधिग्रहण तो होकर ही रहेगा यानी किसानों को जमीन से बेदखल होना ही पड़ेगा। हां, किसान अपनी जमीन के तयशुदा किराये या भारी भरकम मुआवजे के हकदार होंगे, उनके लिए ऊंट के मुंह में जीरे-जैसी पेंशन का प्रावधान हो सकता है, परिवार के किसी सदस्य को छोटी-मोटी कामचलाऊ नौकरी-चाकरी भी दी जा सकती है, लेकिन उन्हें अपनी पुश्तैनी जमीन-जायदाद, आबादी और आजीविका से विस्थापित होने के स्थायी दंश को भोगना पड़ेगा। भूमण्डलीकरण के दौर में यही उनकी नियति बन चुका है।

प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण कानून में जमीन हथियाने का सारा दारोमदार प्रादेशिक सरकारों पर है जो कॉरपोरेट महाबलियों के इशारों पर नाच रही हैं। 'सार्वजनिक उद्देश्य' का दायरा इतना बड़ा कर दिया गया है कि उसमें सब कुछ आ जाता है। यह सारा प्रपंच इसलिए रचा जा रहा है जिससे कॉरपोरेटनीत औपनिवेशीकरण समूचे देश को अपनी गिरफ्त में ले सके। सरकारें कॉरपोरेट-समूहों के लिए जमीनें अधिग्रहीत करना सरकारों का सर्वप्रमुख एजेण्डा बनता जा रहा है। भूमि अधिग्रहण का विरोध करने वाले देशज तबकों, स्थानीय समुदायों, किसानों, गिरिजनों, आदिवासियों, वनोपजीवियों आदि को सरकारें कुचल रही हैं क्योंकि वे कॉरपोरेट-औपनिवेशिक तन्त्र का पुर्जा बन चुकी हैं।

जिस प्रकार ब्रितानी साम्राज्य ने अपना औपनिवेशिक तन्त्र कायम करने के लिए भूमि अधिग्रहण कानून, 1894 का सहारा लिया था उसी प्रकार भूमण्डलीकरण की राह आसान बनाने के लिए कॉरपोरेट-सत्ता की एजेण्ट बन चुकी सरकार भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन बिल ले आयी है। उक्त बिल के गर्भ से निकलने वाला कानून मौजूदा भूमि अधिग्रहण कानून, 1894 से कई गुना ज्यादा पैना, धारदार और खूंखार है। आ रहा कानून देश में कॉरपोरेट-नीत औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया और गति को तेज करेगा।

जनगण-नीत स्वराज की स्थापना के लिए नितान्त आवश्यक है कि भूमि अधिग्रहण कानून, 1894 को फौरन रद्द कराने और प्रस्तावित कानून के निमित्त तैयार बिल को वापस लेने के लिए देशव्यापी शान्तिपूर्ण सामूहिक सविनय अवज्ञा द्वारा सत्ता प्रतिष्ठान को मजबूर किया जाय। स्वराज की स्थापना तभी होगी जब कॉरपोरेट-उपनिवेशवाद का खातमा होगा जिसके लिए बेहद जरूरी है कि देशभर में कॉरपोरेट-घरानों को कहीं भी जमीन न मिले। जमीन जैसी प्राकृतिक सम्पदा लोगों यानी स्थानीय तृणमूल समुदायों के स्वामित्व या नियन्त्रण में रहनी चाहिए।

लोगों की सभाएं/पंचायतें/आबादियां सीधे-सीधे यह तय करेंगी कि उनके सर्वांगीण विकास के निमित्त प्रत्यक्ष सक्रिय जन भागीदारी से चलने वाले कार्यक्रम, अभियान और उपक्रम क्या-क्या होंगे? लोगों के अभिक्रम, सहकार और सहभाग से चलने वाली परियोजनाओं के लिए अगर जमीन की जरूरत पड़ेगी, तो वे खुशी-खुशी जमीन की व्यवस्था खुद-ब-खुद करेंगे। अगर कई पंचायतें/सभाएं/आबादियां यह महसूस करती हैं कि सबके भले के लिए बड़े पैमाने पर कोई परियोजना चलनी चाहिए, तो वे उसके लिए परस्पर सहयोग, अंशदान या त्याग से जमीन का इंतजाम करेंगी। अगर स्थानीय लोग चाहेंगे, तो वे मिलकर प्राथमिक उत्पादन कम्पनियां या सहकारी उत्पादन इकाइयां गठित करेंगे और उनके लिए वे जमीन देंगे।

बुनियादी बात यह है कि लोगों के भीतर से स्वयं विकास की प्रक्रिया शुरू हो। लोग बिना विस्थापित हुए अपने पुश्तैनी प्राकृतिक संसाधनों को युक्तिसंगत इस्तेमाल करके समुचित तकनीक द्वारा अपनी जमीन पर काबिज रहकर विविध उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं का सृजन करेंगे जिनका उपभोग मुख्यतः पड़ोसी आबादी में होगा। आखिरकार जमीन लोगों के हाथ में रहेगी क्योंकि वे ही उसकी असली संतान हैं। जमीन न सरकारों की है, न कम्पनियों की और न ही अदालतों की। वह तो सिर्फ लोगों की है।

जमीन मूलतः 'पीपुल' (जनगण) या→

रसायनों की जहरीली दुनिया

❑ एलिजाबेथ ग्रासमेन

हम एक विशाल और अनियोजित प्रयोग के भंवर में फंसे हैं। पिछली शताब्दी में हमने हजारों-हजार ऐसे रसायन निर्मित कर लिये जिनका इससे पहले धरती पर अस्तित्व ही नहीं था। हमने जानबूझकर इस भौतिक विश्व को बदला है और ऐसे अनगिनत उपयोगी उत्पाद बना लिये हैं जिनके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। लेकिन ये रसायन चाही गई उपयोगिता से परे जाकर हमारी दुनिया को बदल रहे हैं। पाया गया है कि इसमें से बहुतेरे हमारे जीवन की आधारभूत जैविक संरचना जिसमें जीन्स, हारमोन भी शामिल हैं, के साथ हमारी महत्त्वपूर्ण जीवन-प्रणाली को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

हमारी इस जटिल शारीरिक संरचना को जिन रसायनों से सबका पाला पड़ता है, उसके घातक परिणाम अब जन्म के पहले ही प्रभावित करने लगे हैं। इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिल गए हैं कि पर्यावरणीय प्रदूषण अत्यंत जटिल मानव बीमारियों एवं गड़बड़ियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अमेरिका के राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य एवं मानव विकास संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक का कहना है कि सामान्य और लंबी बीमारियों एवं रसायन के जहरीलेपन के अंतर्गत संबंधों से संबंधित संकेत मिल गए हैं।

ऐसा कैसे होता है? लोग तो पुरातन काल से अणुओं से छेड़छाड़ करते रहे हैं। लेकिन 1930 के दशक में रसायनविज्ञों ने व्यापक उत्पादन हेतु उत्पादों को डिजाइन करना प्रारंभ किया और अपना ध्यान अल्कोहल, सेल्युलोज, मक्का, दूध और स्टार्च से हटाकर रासायनिक पेट्रोलियम पदार्थों की ओर लगाया। विशालकाय तेल एवं गैस उद्योग ने भारी मात्रा में हाईड्रोकार्बन उपलब्ध करवा कर रसायनशास्त्रियों को अणुओं के एक नए संसार से परिचित कराया। इसके परिणामस्वरूप रासायनिक यौगिकों का ऐसा प्रयोग हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इस मुहीम ने पीढ़ी दर पीढ़ी तेज गति पकड़ी और प्रत्येक जीवित व्यक्ति को हल्के, न टूटने वाले और लोचदार प्लास्टिक, पानीरोधी कपड़े और ऐसा डिटरजेंट जो कि तेल और ग्रीस भी निकाल देता है, को विश्व में पहुंचा दिया। वैसे ये बहुत थोड़े उदाहरण हैं, जिन्हें आधुनिक रसायन शास्त्र द्वारा अस्तित्व में लाया गया है।

आज अदृश्य रूप से हमारे पूरे शरीर को संचालित करने वाले नानस्टिक बर्तन, चिकनाई न सोखने वाली भोजन पैकिंग, पानी रोधी वस्त्र, पॉलिकार्बिनेट प्लास्टिक, खाने के केन (डब्बे) बैक्टीरियारोधी साबुन, सनस्क्रीन क्रीम, कीटनाशक, भोजन को न सड़ने देने वाले रसायन, नकली खुशबू, सौंदर्य प्रसाधन, खिलौने और राकेट का ईंधन, सभी तो रसायनों के भरोसे हैं। वैज्ञानिकों को नवजात शिशु की गर्भनाल के खून में 200 प्रकार के रसायन मिले हैं। इसके अलावा दुनियाभर से इकट्ठा किए नमूनों में इसी तरह के पदार्थ खून, मूत्र एवं मां के दूध में भी मिले हैं। ये सब रसायन अपने निर्माण स्थल से बहुत दूर वायु, जल, मिट्टी और वन्यजीवन में पाए गए हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि कुछ सिंथेटिक रसायन, प्राकृतिक रसायन उत्पादों से इतने अलग हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें किसी दूसरी दुनिया से लाकर यहां डाला गया हो।

दुनिया भर में प्रतिवर्ष 40 करोड़ टन रसायनों का उत्पादन होता है तथा इसकी मात्रा में लगातार वृद्धि होने की उम्मीद है। व्यावसायिक तौर पर उत्पादित रसायनों की वास्तविक संख्या का कोई अंदाजा नहीं, लेकिन अनुमान यह है कि एक लाख रसायन बाजार में उपलब्ध हैं। इसी के साथ प्रतिवर्ष हजारों नए रसायनों का आविष्कार हो रहा है तथा इनमें से अनेक को बिना पूरी जानकारी के बाजार में उतारा जा रहा है। वैसे कई रसायनों ने हमारे जीवन को सुरक्षित भी बनाया है। लेकिन इसने अनेक तरह से मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए खतरा भी पैदा किए हैं। कई रसायन पर्यावरण में बरसों-बरस बने रहते हैं और कई रसायन पौधों और जानवरों में प्रविष्ट हो हमारी भोजन श्रृंखला में प्रवेश कर जाते हैं।

कई रासायनिक उत्पादों के बारे में यह कहा जाता है कि वे हमारी जीवित कोशिकाओं के प्राकृतिक रसायन को प्रभावित नहीं करेंगे। लेकिन ऐसे कुछ रसायन जो पर्यावरण अनुकूल नहीं हैं वे भी लगातार हमारे संपर्क में रहते हैं, जैसे पुनः इस्तेमाल में आने वाले भोजन एवं पेय के डब्बे, भोजन एवं पेय पदार्थों के केन में प्रयोग आने वाले कलई या लाइनिंग। हमें यह भी पता लगा है कि औद्योगिक

→'कम्यूनिटी' सेक्टर में रहनी चाहिए, सरकारी सेक्टर या कॉरपोरेट सेक्टर में हर्गिज नहीं। यह बात पते की है जिसे जमीनी जन-आंदोलनों को हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए। अगर कॉरपोरेट घरानों के पक्ष में भूमि अधिग्रहण का कुचक्र या अन्तहीन सिलसिला चलता रहा, तो अधिसंख्य आबादी अपनी जड़ों से कटकर खानाबदोश हो जायेगी। वैश्विक कॉरपोरेट घराने या कारोबारी, अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थान या तरह-तरह के फण्डस/निवेशक तथा दुनिया-भर के धन-कुबेर नकदी के इतने बड़े अकूत ढेर पर विराजमान हैं कि वे मुआवजा देकर देश की सारी जमीन खरीद सकते हैं। वे अपनी आभासी या प्रतीयमान पूंजी (Virtual Capital) को वास्तविक पूंजी (Real Capital) में बदलने के लिए दिग्विजय'अभियान पर निकल पड़े हैं। असली खतरे को समझने की जरूरत है। *(पीएनएन)*

कारखाने, चिमनियां, ड्रेनेज पाइप और कचड़ा फेंकने के स्थान ही रसायनों के संपर्क में आने के स्थान नहीं हैं। हम जो पहनते हैं, जिस पर बैठते हैं और सोते हैं और जानबूझकर जिन्हें हम अपनी चमड़ी पर रगड़ते हैं वे भी खतरनाक रसायन हैं। ये जो भोजन हम खाते हैं, पानी या जो कुछ हम पीते हैं, या सांस लेते हैं, में भी रसायन मौजूदा हैं। ये हमारे साथ-साथ ध्रुवीय भालू, समुद्री कछुए, घोंघे, मेंढ़क और सील मछली में भी मौजूद हैं। जलीय वैज्ञानिकों का कहना है पिछली शताब्दी में हमारा ग्रह पिछले किसी भी समय की तुलना में रसायनिक तौर पर अलग था। आज ये रसायन हमारे पूरे शरीर के नाजुक अंगों को प्रभावित कर रहे हैं। बच्चों से लेकर बड़े तक सभी में इसे लेकर समस्याएं खड़ी हो रही हैं। इसका गर्भाधान से लेकर मनोवैज्ञानिक स्तर तक प्रभाव पड़ रहा है। हम जानते हैं कि कुछ रसायन इतने घातक हैं कि उनकी बहुत थोड़ी मात्रा के संपर्क में आने के विध्वंसकारी परिणाम निकल सकते हैं। साथ ही इनके संपर्क में आने से आगे की कई पीढ़ियां भी प्रभावित हो सकती हैं। कुछ रसायन (बीपीए, ट्रिब्युटिलिन, कुछ विशिष्ट फ्थालेट्स एवं पनफ्लोरिनेट यौगिक) ऐसे हैं जो कि मोटापे की कोशिकाएं निर्मित करते हैं, जिससे कि जीवन के बाद के वर्षों में मोटापा बढ़ जाता है।

वैज्ञानिक संस्थाओं ने इनके खिलाफ आवाज उठाई है और नीति निर्माताओं से कहा है कि वे कम से कम ऐसे रसायनों पर प्रतिबंध लगाएं, जिनका शिशुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। साथ ही सुरक्षित उत्पादों के निर्माण की दिशा में कदम उठाएं। हम समय को वापस तो नहीं ला सकते, लेकिन कम से कम ऐसे रसायन बनाने की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं, जो कि मानव जीवन और पर्यावरण के लिए सुरक्षित हों।

(सप्रेस/थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क फीचर्स)

वैश्वीकरण : गरीब का और गरीब होना

❑ रमेश जौरा

क्या वैश्वीकरण से विकास होता है? यदि आप ओईसीडी की रिपोर्ट को खंगालेंगे तो पायेंगे कि वर्तमान वित्त व्यवस्था के धराशायी होने के पहले से ही जोखिम में पड़े लोग अधिक संकट में आय गये हैं और कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण अमीर को और अमीर तथा गरीब को अधिक गरीब बनाने में मददगार रहा है। इस नये अध्ययन के मुताबिक सन् 2011 में निर्धनतम देश सन् 1980 के मुकाबले ज्यादा गरीब हो गये हैं और यहां की अधिकांश आबादी एक डॉलर प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रही है। इस रिपोर्ट को जिन 34 देशों के संगठन ने तैयार किया है कि वे मुख्यतया औद्योगिक एवं कुछ उभरती अर्थव्यवस्थाएं हैं। जहां कुछ देश इनका अनुकरण कर रहे हैं वहीं तमाम देश अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के खुल जाने से कमजोर हुए हैं। विश्व में दारुण गरीबी अभी भी कुछ क्षेत्रों में पायी जाती है। अनेक देशों में असमानताएं बढ़ी हैं। गौरतलब है कि वैश्वीकरण भी तभी विकास में सहायक होता है जबकि विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियां विद्यमान हों।

इस अध्ययन का शीर्षक है, ''आर्थिक वैश्वीकरण : उद्गम एवं परिणाम'' इसके लेखक वैश्वीकरण से जुड़ी दो कहानियां प्रस्तुत करते हैं। ''बारह बरस पहले, व्यावसायिक सौन्दर्य प्रसाधन विशेषज्ञ सिलाव एवं उनकी साझेदार नीनो उत्तरपूर्वी ब्राजील के ग्रामीण प्रांत को छोड़कर साओ पाअलो के उपनगर में बस गयीं। दो दशक की राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता एवं निरंतर वृद्धि के परिणामस्वरूप पिछले 10 वर्षों में इस अंचल की बेरोजगारी दर में आश्चर्यजनक गिरावट देखने में आयी। यह सफलता ब्राजील की अर्थव्यवस्था द्वारा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में घुसपैठ की वजह से मिली। पिछले 20 वर्षों में ब्राजील की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदारी दोगुनी हो गयी है। इससे अनेक परिवारों को रोजगार मिला एवं उनकी क्रयशक्ति में भी वृद्धि हुई। उनका कहना है ''हमारे पास पहले की बनिस्बत काफी अधिक अवसर हैं।'' आज उनके पास एक छोटी कार, मोबाइल और स्वास्थ्य बीमा भी है। वे अब पुनः विद्यालय जाकर नर्सिंग की पढ़ाई करना चाहती हैं। वह कहती हैं, ''मुझमें अब अधिक आत्मविश्वास है और भविष्य हम पर मुस्करा रहा है।''

ठीक इसी समय माली की राजधानी बामाको से 250 किलोमीटर दूर एक किसान याकोबा त्राओरे मालिअन टेक्सटाइल डेवलेपमेंट कंपनी की शिकायत कर रहा है। यह कंपनी माली के कपास उत्पादकों एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार के मध्य का कार्य करती है। उनका कहना है कि ''गत वर्ष उन्होंने मुझे प्रति किलो कपास के बदले 210 फ्रेंक दिये थे। लेकिन इस वर्ष केवल 150 फ्रेंक ही दिये। अच्छी गुणवत्ता के बावजूद माली की कपास विकसित देशों के किसानों द्वारा उत्पादित कपास का मुकाबला नहीं कर सकती, क्योंकि उन्हें सब्सिडी नहीं मिलती। इसी सब्सिडी की वजह से अमीर देशों के किसान विलासितापूर्ण जीवन जी पाते हैं। खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों ने स्थितियों को और भी बदतर बना दिया। आयातित चावल जो कि स्थानीय चावल से भी सस्ता है का मूल्य 250 फ्रेंक से बढ़कर 360 फ्रेंक प्रति किलो हो गया। छः बच्चों के पिता याकोबा का कहना है, ''मेरी कमाई दिनोंदिन कम होती जा रही है, जबकि महंगाई लगातार बढ़ रही है। किसी आश्चर्य के चलते ही मैं

अगले वर्ष अपने दो छोटे बच्चों को विद्यालय भेज पाऊंगा।''

वैश्वीकरण के दो चेहरे : ये वैश्वीकरण के दो चेहरे हैं। एक में अंतर्राष्ट्रीय बाजार के खुलने से खुशहाली आयी तो दूसरे में दुर्दशा। शोधकर्ताओं का कहना है कि ''विकास के संबंध में वैश्वीकरण के प्रभाव को समझने के दो तरीके हैं, देशों पर पड़ने वाला कुल प्रभाव एवं देश के भीतर रह रही जनसंख्या पर विकास का अध्ययन।'' वे स्पष्ट कहते हैं, ''निश्चित तौर पर देश का विकास जनसंख्या के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन यह जुड़ाव स्वमेव ही नहीं हो जाता। वैश्वीकरण की वजह से विकासशील देश भी समृद्ध देशों के समकक्ष आने के प्रयास में हैं। लेकिन विश्व जनसंख्या में अमीरों और गरीबों के बीच की खाई और चौड़ी हो गयी है।

इसके बावजूद पिछले 20 वर्षों के तेज वैश्वीकरण के चलते अत्यन्त दरिद्रता में विश्वव्यापी कमी आयी है। सन् 1990 से एक डॉलर से कम पर गुजारा करने वालों की संख्या में 20 प्रतिशत यानी 50 करोड़ व्यक्तियों की कमी आयी है। तथा इनकी कुल हिस्सेदारी 31 प्रतिशत से घटकर 19 प्रतिशत पर आ गयी है, लेकिन इस संख्या में सर्वाधिक योगदान चीन के बेहतर नतीजों का है। पिछले 15 वर्षों में चीन की प्रति व्यक्ति आय में अन्य विकासशील देशों के मुकाबले ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1981 में जहां चीन में 83.30 करोड़ चीनी 1.25 डॉलर प्रतिदिन से कम पर रह रहे थे वहीं यह संख्या अब ''महज'' 20.80 करोड़ रह गयी है। हालांकि ''विश्व का कारखाना'' पूरी क्षमता से चल रहा है, लेकिन जरूरी नहीं है कि इससे इसके पड़ोसी भी खुश हों, क्योंकि कई अन्य देशों में गरीबी घटने के बजाए बढ़ रही है।

अधिक गरीब व्यक्ति : यदि दक्षिण एशिया को लें तो यहां उच्च विकास दर के बावजूद गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारत की दरिद्र जनता का उदाहरण लें। इनकी संख्या 15 वर्षों की इसी अवधि में 3.6 करोड़ बढ़ गयी है। हालांकि कुल जनसंख्या में वास्तव में गरीबी 58 प्रतिशत से घटकर 42 प्रतिशत पर आ गयी है। इसके बावजूद भारत के लाखों लाख लोग अभी भी 1.25 डॉलर प्रतिदिन और 75 प्रतिशत लोग 2 डॉलर प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रहे हैं।

दूसरा मामला उप सहारा अफ्रीका का है। यह अभी विकास के नाम पर पिछड़ा हुआ है। पिछले 30 वर्षों से यहां की पूरी 50 प्रतिशत आबादी गरीबी में रह रही है। एक शोध का मानना है कि हमेशा से ऐसा नहीं था। सन् 1970 में विश्व के 11 प्रतिशत अत्यन्त गरीब अफ्रीका में रहते थे बनिस्बत 70 प्रतिशत एशिया के। लेकिन पिछले 30 वर्षों में यह अनुपात एकदम उल्टा हो गया है। यानी विश्व के कुछ क्षेत्र अधिक गरीब हुए हैं।

इस अध्ययन में यह भी स्वीकार किया गया है कि वैश्वीकरण से सभी विकासशील देश लाभान्वित नहीं हुए हैं। अनेक देश पिछले 20 वर्षों से एक ही जगह स्थिर हैं। सन् 2006 में विश्व के 42 देशों की प्रतिव्यक्ति आय 875 डॉलर से अधिक नहीं थी। इनमें 34 देश उप सहारा अफ्रीका (मेडागास्कर, गुइनिआ गणराज्य, कांगो) में, 4 लेटिन अमेरिका में (बोलिविया, गुयाना, होंडुरास, निकारागुआ) एवं एशिया में तीन (म्यांमार, लाओस, वियतनाम) शामिल हैं। 49 कम विकसित देशों में संयुक्त राष्ट्र संघ की परिभाषा के अनुसार, बांग्लादेश, यमन और हैती शामिल हैं। *(सप्रेस)*

गांधी का कर्जदार है सिनेमा

3 मई, 1913 को पहली बोलती फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' के प्रदर्शन से भारतीय रजतपट की 3 मई, 2013 को भव्य शताब्दी मनायी गयी। सपने में भी जो सत्यवादी थे ऐसे राजा हरिश्चन्द्र पर बनी फिल्म को महात्मा गांधी ने भी देखा और सराहा था। सौ साल के रूपहले परदे ने देश-विदेश में शानदार मुकाम हासिल किये। आवाम के दिलों पर राज कायम कर लिया। आंखों और कानों को भी मुग्ध करने वाली कला का लक्ष्य क्या हो, केवल मनोरंजन या साथ में कुछ परिवर्तन और निर्माण? सिनेमा ने गांधीगिरी शब्द चलाया पर देश में गांधीवाद भी आये इस पर गांधीगिरी नहीं हुई। बापू के प्रति कुछ अंग्रेजी व हिन्दी फिल्मों के माध्यम से वंदगी भी बहुत हुई पर उनके कर्ज की अदायगी रह गयी। उम्मीद आज भी बंधी है कि भारतीय सिनेमा अपनी अगली सदी में गांधी की निर्माणकारी शख्सियत को जन-मानस में बैठाकर उस कर्ज की अदायगी करेगा। ऐसी फिल्में भी देगा जिनसे बच्चा-बच्चा जाने कि सत्य और अहिंसा के रास्ते से किस तरह दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाला? उस साबरमती के संत का कमाल उतना ही नहीं था। बापू के सपनों का भारत, विश्व को उनका संदेश, सत्य के प्रयोग, हिन्द स्वराज्य, ग्रामस्वराज्य और शांति सेना की बोलती तस्वीर दृश्य-श्रव्यकला के हाथों उकेरी जानी बाकी है। जो समग्र क्रांति अब तक नहीं हो सकी अब होगी, जरूर होगी पर होगी फिल्मांकन से। क्योंकि यह कला दिल जीतने में सक्षम है। गांधीजी नोटों पर ही न हों दिलों में भी हों। **–डॉ. प्रभु**

कृषि की अहमियत

❑ अरुण डिके

मानव सभ्यता के मूल में खेती होते हुए भी आज खेती संकट में है। विश्व की यह सबसे बड़ी शोकांतिका है, क्योंकि भारत में ही नहीं चीन और अमेरिका जैसे देशों में भी किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। सुविधाभोगी और फैशनपरस्त जिंदगी जी रहे शहरी लोग विकास के लिए इसे आवश्यक घटना मानकर भले ही अपने हाथ झटक लें, लेकिन इस पाप की भागीदारी से वे बच नहीं सकते। पंढरपुर (महाराष्ट्र) के पास अंकोली गांव में वैज्ञानिक अरुण देशपांडे ने तो व्यथित होकर अपने खेत के बाहर एक बोर्ड टांग रखा है। मेरे देश के 2लाख 40 हजार किसान भाई आत्महत्या कर चुके हैं और इतने ही दिनों तक मैं सूतक में रहूंगा।

दाभोलकर सूर्य खेती प्रयोग परिवार के सदस्य अरुण देशपांडे के पास अकालग्रस्त सोलापुर जिले में स्वनिर्मित तालाब में आज आठ करोड़ लीटर जल उपलब्ध है और महाराष्ट्र शासन ने उनके खेत को कृषि पर्यटन क्षेत्र में शामिल किया है। सुनामी या भूकंप जैसी दैवीय घटनाओं से तबाही के लिए भले ही हम जिम्मेदार न हों, लेकिन हमारे किसानों की हारी जिंदगी को खुशहाल कर हम उन्हें वापिस लौटा सकते हैं। आज पूरा विश्व दो प्रमुख समस्याओं से घिरा हुआ है, एक अन्नसुरक्षा और दूसरी आतंकवाद। ये दोनों घटनाएं परोक्ष या अपरोक्ष रूप से एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अन्न, वस्त्र और मकान मानव के लिए आवश्यक हैं और ये तीनों चीजें खेती से मिलती हैं। लेकिन दुर्भाग्य से विकास का जो शहरी ढांचा हमने खड़ा किया है उसी के नीचे हमारा अन्नदाता दब गया है। खेती को पिछड़ा हुआ व्यवसाय मान लिया गया है और किसान को निरा गंवार, अनपढ़ और दकियानूसी करार दिया गया है।

आज पूरे विश्व में भारत को यदि महाशक्ति होने का हकदार माना जा रहा है तो वह टाटा, बिड़ला, अंबानी, मित्तल और आय़ टी. के नूतन नवधनाढ्यों के कारण नहीं, बल्कि इसी शूद्र, गंवार, अनपढ़ और दकियानूसी किसान जमात के कारण है। गांधी ने इस शक्ति को सही रूप में पहचाना था। इसलिए तिलक के पश्चात् स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई अहिंसक मार्ग से लड़ी जाएगी यह प्रस्ताव उन्होंने कांग्रेस की कार्यकारिणी सभा में जब पारित करा लिया, तो उसके एक साल के अंदर कांग्रेस की सदस्यता 1 करोड़ हो गई थी, जिसमें 96 लाख किसान थे। गांधीजी का आग्रह था कि यदि हमें यह देश सचमुच प्रजातांत्रिक तरीके से चलाना है तो शासन में बैठे 75 प्रतिशत लोग किसान होने चाहिए।

खेती मात्र अन्न, वस्त्र और आवास निर्मित करने का ही साधन नहीं है, फसलों से जीवनावश्यक कुटीर उद्योग भी गांव में चलते थे और लोगों को रोजगार मिलता था। यही भारत का वैज्ञानिक कसौटी पर परखा और खरा उतरा पारंपरिक ज्ञान था। आजादी के बाद हमारे देश में कृषि-शिक्षा और अनुसंधान का जो जाल बिछाया गया उसने इस पारंपरिक ज्ञान की विद्वता को नकारा और अपने स्नातकों और कृषि वैज्ञानिकों को गांवों से तोड़ा। अमेरिका में जिस तरह उद्योगों को चलाने के लिए खेती की जाती है, ठीक वही प्रयोग हमारे यहां प्रारंभ हुए। यह जमीनी सच्चाई है कि आजादी के बाद भीमकाय उद्योगों का जाल पूरे देश में फैलाकर और अपने खजाने का खरबों रुपया लगाकर भी हम गरीबों को जीने की मूलभूत चीजें मुहैया नहीं करा पा रहे हैं।

उपयोगी पारंपरिक फसलों की जगह किसानों से नकदी फसलें उगवाकर हम उनके हाथों में धन (मुद्रा-नोट) दे रहे हैं और उनकी दौलत (लकड़ी, चारा, जल, विविध फसलें, मवेशी और मजदूर) उनसे लूट रहे हैं। बेशक हमारे कई राजनेता किसान हैं, लेकिन वे धन लोभी एजेंसियों के हाथों व सत्ता का जो अनैतिक खेल, खेल रहे हैं उससे देश को नुकसान पहुंच रहा है। आज भ्रमित वैश्वीकरण में लिप्त इन एजेंसियों के खिलाफ पूरे विश्व के संवेदनशील नागरिक एकजुट हो रहे हैं और अपनी सरकारों को चुनौती दे रहे हैं। आज कई देशों में समुदाय आधारित खेती हो रही है। समुदाय अपनी आवश्यकता के अनुसार किसानों से खाद्यान्न पैदा करवा रहे हैं। किसान और उपभोक्ता एक हो रहे हैं और दुकानदारों को चुनौती दे रहे हैं।

भारत में हमारे पूर्वज अपनी आय का एक हिस्सा आवश्यक रूप से दान, धर्म और सामाजिक उन्नति के लिए करते थे। लेकिन आज धर्म के नाम पर जिस तरह लोगों को छलावे में रखा जा रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। वैसे ही शिक्षा का जो व्यापार देश में चल रहा है उससे देश का भला नहीं होने वाला है। गांधीजी ने सौ साल पहले ही इसे भांप लिया था और इसलिए वे ग्रामीण शिक्षा से ग्रामीण मजबूती पर जोर देते रहते थे। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश के संवेदनशील नागरिकों को किसान कोष की स्थापना करना चाहिए और किसानों को सम्मानीय दौलत (धन नहीं) गांवों में मुहैया कराना चाहिए। यही देश के हित में है और यही ग्रामोन्मुखी विकास का सच्चा पूंजी निवेश भी होगा। *(सप्रेस)*

गंगा का आर्तनाद सुनो!

❑ अरुण तिवारी

गंगा पर राजनीतिक क्षुद्रता जिस हद तक गिर गई है, पैसे का खेल जिस कदर बढ़ गया है, गंगा-रक्षा में हम सभी तरह नकारा सिद्ध हुए हैं, मां गंगा आर्तनाद कर रही है।

हवा-हवाई हुई हुंकार : आपको याद ही होगा कि पिछले बरस 17 जून को देशभर के धर्मगुरु व गंगा आंदोलनकारी दिल्ली के जंतर-मंतर पर आर-पार की हुंकार भरते दिखे थे। एक उम्मीद जगी थी कि शायद मां की सेहत के लिए सचमुच महासंग्राम हो, शायद सोई संवेदनायें सचमुच जाग जायें, शायद सरकारों को सत्ता के दंभ व दाम के दबाव से उबरने को विवश किया जा सके, शायद गंगा के नाम पर पैसा बनाने व बहाने वाले इंजीनियारों, कंपनियों व पर्यावरण के ठेकेदारों को शर्म आये। लेकिन कुछ नहीं हुआ। महासंग्राम ने चौमासे के नाम पर ऐसी चुप्पी साधी कि गंगा को जिलाने के बजाय यह खुद ही मृत हो गया। उसमें शामिल धर्मगुरु और संगठनों का कहीं अता-पता नहीं चला। कुंभ आया और चला गया। मां गंगा का कोई इलाज नहीं हुआ। पढ़े-लिखे अंतरमंत्रालयी समूह की रिपोर्ट भी ऐसी झोलाछाप सिद्ध हुई, जो इलाज से ज्यादा मरीज से कमाने में रुचि रखता है। इस नीयत के खिलाफ कुछ आवाजें उठीं जरूर, लेकिन वे भी नक्कारखाने की तूती ज्यादा साबित नहीं हुईं। अब बताइये! ऐसे में मां क्या करे?

दिखावटी है हमारा मातृ-प्रेम : मां गंगा देख रही है हर बरस कभी कुंभ, कभी माघ-मेला, कभी कार्तिक पूर्णिमा, कभी छठ-पूजा और कभी गंगा दशहरा. गंगा किनारे के सबसे बड़े पानी के मेले लगते हैं, करोड़ों दीपदान होते हैं, कोटि-कोटि हाथ....एक नहीं, कई-कई बार गंगा के सामने जुड़ जाते हैं, हर-हर गंगे! जय-जय मैया!! गाते हैं, लेकिन यही कोटि-कोटि हाथ गंगा के पुनरोद्धार के लिए एक साथ कभी नहीं जुटते। गरीब से गरीब परिवार भी अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा खर्च करके गंगा-दर्शन के लिए आता है, लेकिन वह गंगा-रक्षा के सिद्धांत को कभी याद नहीं करता। गंगा-दर्शन को समझने और समझाने एक साथ कभी नहीं बैठता।

अजीब बात है कि गंगा को लेकर किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय या वर्ग में कोई भेद नहीं। कहने को गंगा को सभी मां कहते हैं। नेता, अफसर, भ्रष्ट और सज्जन....सभी इसके आगे एक साथ मत्था टेकते हैं। बावजूद इसके, सभी के मन में गंगा-रक्षा का संकल्प एक साथ कभी नहीं जगता....यह प्रश्न कभी नहीं उठता कि मल बन चुका गंगाजल, शिव को अब स्वीकार्य नहीं है।

आचार व संस्कार की संहिता भूले हम : गंगा देख रही है कि जो समाज कभी दूसरों को पानी पिलाकर...बैसाख-जेठ में प्याऊ लगाकर, नवसम्वत् , गंगा-दशहरा, वसंतपंचमी और गुरुपर्व पर शरबत बांटकर स्वयं को धन्य मानता था, वही समाज अब पानी व नदी खरीद-बेचकर धन्य हो रहा है। जो समाज कभी गंगा किनारे कुंभ लगाकर गंगा के साथ संस्कार और व्यवहार की मर्यादा तय करता था, वही समाज आज गंगा को अंतिम संस्कार के लिए तैयार कर रहा है। गंगा के किनारे 36 करोड़ तीर्थों की परिकल्पना है। गंगा देख रही है कि जिन साधु और संतों को इन तीर्थों में बैठाकर गंगा ने चौकीदारी का दायित्व सौंपा था, वे ही गंगा से संस्कार की आचार संहिता भूल गये हैं। उनके आश्रमों का कचरा व मल ही गंगा को मलीन करने से नहीं चूक रहा। जब गुरु ही गोरू हो जाये, तो फिर उम्मीद ही कहां बचती है! गंगा देख रही है कि जो समाज भगीरथ और भीष्म को याद रखता है, राम और कृष्ण को पूजता है, वही कृष्ण के कहे को भूल गया है—

'स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी...यानी नदियों में मैं गंगा हूं।'' वह इस दुर्योग को भी देख रही है कि समाज ने स्वामी दयानंद, कबीर, रैदास, वाल्मीकि, तुलसी, चाणक्य, आदिगुरु शंकराचार्य, अकबर, बुद्ध, नानक और महावीर को तो याद रखा, लेकिन उनके कहे गंगा वाक्यों को तो वह याद भी नहीं रखना चाहता। उसे न गंगाष्टक याद है, न जगन्नाथ की अमृतलहरी और न यह कि गो, गीता और गायत्री के बाद मुक्ति का यदि कोई चौथा द्वार बचता है, तो वह है—गंगा! इसलिए आज गंगा की पुकार है। मां की चीत्कार है। मां मरना चाहती है।

गंगा-मृत्यु को विवश करते हम : गंगा, सचमुच अब बहुत बेबस है, बीमार है....लाचार है। उत्तराखण्ड मां के मायके में ही उसका गला घोंट रहा है। गंगा के वेग को थामने वाले वनरूपी शिव-केशों को काट रहा है। ''कंकड़ कंकड़ में शंकर'' रूपी पत्थरों के चुगान और सांस देने वाली रेत के खदान में ही सारा मुनाफा देख रहा है। उत्तर प्रदेश, गंगा के अमृत में विष घोल रहा है, कमेलों (बूचड़खानों) का खूनी कचरा बहाकर उसके फेफड़े सड़ा रहा है। उत्तर प्रदेश गंगा के करोड़ों जीव और बहुमूल्य वनस्पतियों का घोषित हत्यारा है। उत्तर प्रदेश गंगा के सीने पर बस्तियां बसाने की योजना-परियोजना निर्माण के व्यभिचार का भी दोषी है। बिहार, प्रदूषण के अलावा गंगा के किनारों को कटान से क्षत-विक्षत कर रहा है। झारखण्ड, धरती का अतिशोषण कर आर्सेनिक उपजा रहा है। पं. बंगाल ने तो इसका नाम ही मिटा दिया है। इसे गंगा से हुगली बना दिया है। ससुराल-सागर में पिया मिलन से पहले ही बैराज लगा दिया है। अब बताओ कि गंगा मरे न तो क्या करे?

तो आओ! एक बार तो सुन लें गंगा की पुकार। एकजुट होकर मां को दोबारा निर्मल, अविरल, सजल बना दें, ताकि मां भी रहे जीवित और हम भी। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

सर्वोदय राहत अभियान : सर्वोदय राहत अभियान ने अब तक किल्लारी भूकम्प, सुनामी, कच्छ भूकम्प, कश्मीर भूकम्प, मुम्बई बाढ़, कोसी बाढ़ जैसी हर नैसर्गिक आपत्ति में राहत एवं निर्माण का काम किया है। तात्कालिक राहत के साथ दूरदृष्टि से स्थायी निर्माण के काम करना, इस अभियान की विशेषता रही है।

मराठवाड़ा अकाल में भी अभियान ने इसी भूमिका से निम्न काम किये हैं :

महाराष्ट्र गोवंश बचाओ अभियान की ओर से मैं, विजय कलमकर एवं मराठवाड़ा के वरिष्ठ सर्वोदयी ज्ञानेश्वर मुंढे ने मराठवाड़ा के अकालग्रस्त इलाकों का प्रत्यक्ष मुआयना 1 से 3 अप्रैल तक किया। स्थानीय कार्यकर्ता हर जगह साथ थे। बीड़ में जिलाधिकारी से मुलाकात की, पत्रकारों से भेंट की। अकाल की स्थिति, अकाल की राजनीति, भूगर्भीय एवं धरती के ऊपरी भाग के जल की स्थिति देखी-समझी। स्थिति कुछ इस प्रकार थी— बीड़, जालना, जिले में अकाल की गहराई ज्यादा थी। नांदेड़, नगर, सोलापुर के कुछ हिस्सों में स्थिति खराब थी। शेष जिलों में अकाल क्यों घोषित हुआ, यह समझने लायक है।

फिलहाल हम सर्वोदय राहत अभियान के माध्यम से निम्न काम कर सके :

1. बीड़ के मोर अभयारण्य में वन्य पशुओं के पेयजल की व्यवस्था, साथ ही 15 जगह टंकियां रखीं। इसका कुल खर्च रुपये 2 लाख हुए।

2. बीड़ जिले में 10895 जानवरों के लिए चारा तथा पानी की व्यवस्था घर-घर की। इससे हमारा अन्य व्यवस्थागत खर्च तो बचा ही साथ ही किसान को कष्ट भी नहीं हुआ और पशुओं की देखभाल अच्छी हुई। यह काम वैद्य शिवप्रसाद चरखा एवं साथी (वारकरी संप्रदाय) की देखरेख में हुआ। इस मद में 15 अप्रैल से 8 जून तक का खर्च 24,90,218 रुपये हुए। प्राप्त रकम का हिसाब हमने 10 जून को ही लेखांकित कराकर दाता एवं जनता को दे दिये। इस काम में वैद्य चरखा (साने गुरुजी परिवार मालेगांव के मित्र) के समूह का विशेष योगदान रहा। इस संदर्भ में बीड़ के कलेक्टर श्री केंद्रेकरजी का सराहनीय सहयोग मिला। आप अत्यन्त अनुशासनप्रिय, जनप्रिय चरित्रवान व्यक्ति हैं।

3. नांदेड़ जिले में 15 अप्रैल से 6 जून तक 155 जानवरों के लिए छावनी लगवायी। इसमें कुल खर्च 1.80 लाख हुआ। यह काम सर्वोदय कार्यकर्ता श्री खुशाल जाधव एवं उनके सहयोगियों ने किया।

4. सोलापुर जिले में श्री लक्ष्मन वाघचौरे ने आपने कुएं से 3 देहातों को 2 माह तक पीने का पानी टैंकर से पहुंचाया, इसमें माठाकर्जी ने 25 हजार रुपये की व्यवस्था की। शेष खर्च लक्ष्मण भाई ने स्वयं किया।

5. बीड़ जिले में 7 लाख रुपये की लागत से 28 समर्सिबल पम्प बैठाकर 28 गांवों को पीने के पानी का प्रबंध किया गया।

इस पूरे राहत कार्य में महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल का विशेष सहयोग रहा।

मुंबई सर्वोदय मंडल के रमेश ओझा, मुलुंद के सर्वोदय मित्र चन्द्रकांत भाई ग्रोगरी एवं दामजी भाई गडा के विशेष सहयोग से यह सब राहत-कार्य सम्भव हो सका।

संपर्क : ज्ञानेश्वर मुंढे (09423444670), डॉ. सुगन बरंठ (09422252791, ई-मेल : loksamitee@yahoo.com)

–डॉ. सुगन बरंठ

विनीत : आबा कांबले (अध्यक्ष, महाराष्ट्र प्रदेश सर्वोदय मंडल), जयवंत मठकर (अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम), डॉ. सुगन बरंठ (अध्यक्ष, नई तालीम समिति, सेवाग्राम)।

युवा शिविर सम्पन्न : मुंबई सर्वोदय मंडल द्वारा आयोजित 'युवा शिविर' 25 से 30 मई को महावीर नगर, चिंचणी, जिला ठाणे (महाराष्ट्र) में 46 युवाओं की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

शिविर के व्यवस्थापक, संचालक मिलाकर कुल 60 की उपस्थिति रही। युवाओं में सामाजिक भाव निर्माण हो, इस उद्देश्य से शिविर आयोजित किया गया था। सांप्रदायिकता, अंधश्रद्धा, स्त्रियों पर बढ़ती हिंसा विषयों के साथ ही गांधीजी के योगदान पर युवाओं से संवाद किया गया। रमेश ओझा, जयंत दिवाण, मंसूर पटेल, हरिश सदानी, मच्छिंद्र मुंडे, जानकी प्रशांत ने उपरोक्त विषयों पर युवाओं का मार्गदर्शन किया।

खेल, प्रार्थना, योगासन, श्रमदान शिविर की दिनचर्या में शामिल रहा। शिविर-समूह जीवन जीने की शिक्षा है। विभिन्न भाषा, धर्म, प्रांत के युवा पांच दिन तक एक साथ रहे। इन शिविरार्थियों को विचारों से परिचित करना तथा समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में उन्हें ढालना अब हमारी जिम्मेदारी है। **–टी. आर. के. सोमैया**

सर्वोदय विचार परीक्षा संपन्न : राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, जयपुर द्वारा द्विस्तरीय सर्वोदय विचार प्रवेश एवं परिचय परीक्षा जनवरी में पूरे प्रदेश के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में 150 परीक्षा-केन्द्रों पर सम्पन्न हुई। जयपुर सहित पूरे राजस्थान के 150 परीक्षा केन्द्रों पर 8500 परीक्षार्थी परीक्षाओं में सम्मिलित हुए।

सर्वोदय विचार प्रवेश एवं परिचय परीक्षा में 6612 परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुए, परीक्षा परिणाम 96.20 प्रतिशत रहा। श्रेष्ठ परीक्षा परिणामों के लिए प्रेरक शिक्षकों को प्रमाण-पत्र के साथ सम्मानित किया जायेगा।

परीक्षाओं में सफल परीक्षार्थियों को प्रमाण-पत्र परीक्षा केन्द्रों के माध्यम से भिजवा दिये गये हैं। वरीयता में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त परीक्षार्थियों को नकद पुरस्कार रुपये 1,500, 1,000 व 500 दिये जायेंगे। चौथे व पांचवें स्थान पर रहे परीक्षार्थियों को 200-200 रुपये सांत्वना पुरस्कार ग्रीष्मावकाश के बाद स्थानीय स्तर पर प्रदान किया जायेगा। वरीयता सूची में दसवें स्थान तक रहे परीक्षार्थियों को सांत्वना पुरस्कार स्वरूप सद्साहित्य प्रदान किया जायेगा। **–ओमप्रकाश शर्मा**

कविता

हमारा लोकतंत्र लौटा दो

–डॉ. प्रभु

ऊपर से नीचे तक
भ्रष्टता का बहता पनाला देखकर
चुनावों में मिटती
बेशुमार दौलत का हवाला देखकर
अर्थव्यवस्था का दिवाला
और जनता का महंगा निवाला
देखकर
जहां भी दिखता है
तुम्हारा नेताई चेहरा
पैसेवाला दिखता है या पैसेवालों का
खरीदा मोहरा दिखता है
हवालों जैसे अनंत घोटालों में
घुट रहा है लोकतंत्र
जिन हाथों में पलना था पनपना था
उन्हीं हाथों से लूट रहा है लोकतंत्र
राजनेताओं, एक बार सभी को
खरीद लो
सभी कुछ लूट लो
मगर लोकतंत्र का जिन्दा जिस्म
लौटा दो
लोकतंत्र की अमर आत्मा लौटा दो।

संसार की दीवारें धिक्कारती हैं
तुम्हारी कर्तव्य-अवहेलना पर
आम आदमी को कहां फुर्सत
रोजी-रोटी से कि वहां झांकें
उनमें कहां इतनी कूबत कि लड़ें चुनाव
और अपनी शक्ति वहां आंकें
सावधान सदनों, खुल चुकी हैं
न्यायपालिका की सतर्क आंखें
काले कारनामों के लिए
नहीं देती है वोट जनता
पन्ने फड़फड़ाते हैं इतिहास के
सहती है चोट पर चोट जनता
ऊंचे से ऊंचे पदों से चरित्र
और चरितार्थता होती है ऊंची
तुम्हारी झूठी जय-जयकारों
और मालाओं से
लोकतंत्र का क्या रिश्ता है?
सियासती दांव-पेंच उठा-पटक
और छलावी कसरतों से
अब आंखें मूंदकर नहीं बैठेगा
लोकतंत्र
स्वच्छ करो यह सारा आकाश
कुर्सियां ही चाहिए तो एक बार
सारी की सारी कुर्सियां ले लो
मगर हमारे लोकतांत्रिक
अधिकारों और विश्वासों की
हरी-भरी वाटिकाएं लौटा दो
हमारा हरियाला लोकतंत्र लौटा दो।

जो सबेरे से शाम तक परेशां हैं
सिर्फ रोटी के लिए
परेशां हैं इंसाफ और
तरक्की के लिए
बच्चों के लिए
खुशहाली और बेहबूदी के लिए
और जो विस्फोटों के आतंक
और असुरक्षा का खौफ खाते हैं
उनके वोट फुसलाने वालों
खतम करो
अभिजात्य वर्ग के अहं की
तुष्टि का सिलसिला
भारत माता की शपथ लो और
बतलाओ
जमहूरियत को क्या मिला?
आजादी आयी है
तो तुम्हारे ही हाथों में आयी है
राजनेताओं,
तुम्हारा ही बेखौफ कब्जा है, राज है
जय हिन्द, जय भारत है
कानून तुम्हारे लिए कुछ
और जनता के लिए कुछ है
किस मुंह से लेते हो महापुरुषों के नाम
कहां दबा रखे हैं सपने बापू के
भारत के
भारत के नवनिर्माण के
उन्हें लौटा दो
अब तो लौटा दो
हमारा खोया लोकतंत्र लौटा दो।

❑ *सत्यशीलम प्रकाशन, निकट विजय टाकीज, सागर (मध्य प्रदेश)*

❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600